



# 1945年12月

1945年12月1日，日本帝国主义侵略者，在第二次世界大战中，被盟军打败，无条件投降。这是中国人民抗日战争取得最后胜利的标志。

1945年12月2日，日本帝国主义侵略者，在第二次世界大战中，被盟军打败，无条件投降。这是中国人民抗日战争取得最后胜利的标志。

1945年12月3日，日本帝国主义侵略者，在第二次世界大战中，被盟军打败，无条件投降。这是中国人民抗日战争取得最后胜利的标志。

1945年12月4日，日本帝国主义侵略者，在第二次世界大战中，被盟军打败，无条件投降。这是中国人民抗日战争取得最后胜利的标志。

और इतने गहन ग्रन्थ का विवेचन सहजगम्य बन सका । मैं उक्त सभी विद्वानों का अमीम कृतज्ञता के साथ आभार मानता हूँ ।

श्रद्धेय श्री मरुवरकेसरीजी महाराज का समय-समय पर मार्गदर्शन, श्री रजत-मुनिजी एवं श्री मुकनमुनिजी की प्रेरणा एवं साहित्य समिति के अधिकारियों का सहयोग, विशेषकर समिति के व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी सेटिया की सहृदयता पूर्ण प्रेरणा व सहकार से ग्रन्थ के संपादन-प्रकाशन में गतिशीलता आई है, मैं हृदय से आभार स्वीकार करूँ—यह सर्वथा योग्य ही होगा ।

एक भाग के साथ कर्मग्रन्थ के छह भागों में जैन कर्मशास्त्र का समग्र विवेचन सम्पन्न हुआ है । छटा भाग सबसे बड़ा भी है और महत्त्वपूर्ण भी । इसमें पारिभाषिक शब्द-कोष, पिण्डप्रकृति सूचक शब्द-कोष तथा प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ-सूची का समावेश हो जाने से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है ।

विवेचन में कहीं त्रुटि, सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता तथा मुद्रण आदि में त्रुटि रही हो तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और हंस-बुद्धि पाठकों से अपेक्षा है कि वे स्नेहपूर्वक सूचित कर अनुश्रुति करेंगे । भूल सुधार एवं प्रमाद-प्रतिहार में सहयोगी बनने वाले अमिनन्दनीय होते ही हैं । वस इसी अनुरोध के साथ—

विनीत

श्रीचन्द सुराना 'सरस'



जैनदर्शन में कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिगूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमों में और उत्तरवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वह प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकड़ों में कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने गूँथा है, कंठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थों में कर्मग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित इसके पाँच भाग अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा में है और इसकी संस्कृत में अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। गुजराती में भी इसका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा में इस पर विवेचन प्रसिद्ध विद्वान् मनीषी पं० मृणाल जी ने लगभग ४० वर्ष पूर्व तैयार किया था।

वर्तमान में कर्मग्रन्थ का हिन्दी विवेचन दुष्प्राप्य हो रहा था, फिर इस समय तक विवेचन की जैली में भी काफी परिवर्तन आ गया। अनेक तत्त्व-जिज्ञासु मुनिगण एवं श्रद्धालु श्रावक परमश्रद्धेय गुरुदेव मरुधरकेसरी जी महाराज साहब से कई वर्षों में प्रार्थना कर रहे थे कि कर्मग्रन्थ जैसे विशाल और गम्भीर ग्रन्थ का नये ढंग में विवेचन एवं प्रकाशन होना चाहिए। आप जैसे समर्थ शास्त्रज्ञ विद्वान् एवं महाशयविर मंत ही इस अत्यन्त श्रमसाध्य एवं व्यय-साध्य कार्य को सम्पन्न करा सकते हैं। गुरुदेव श्री का भी इस ओर आकर्षण था। अनेक बार भी यून हो चुका है। इसमें भी लम्बे-लम्बे विहार और अनेक संस्याओं पर वर्षावर्षों का आयोजन! व्यग्र जीवन में आप १०-१२ घंटा से अधिक समय तक ग्रन्थ की साम्यम्भाध्याय, नादित्य-गर्जन आदि में लीन रहते हैं। १० वर्ष गुरुदेव श्री ने इस कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प किया। विवेचन विमल प्रामाण्य रित। विवेचन को भाषा-शैली आदि दृष्टियों से सुन्दर एवं शोभायुक्त बना दिया। पुस्तक, आगमों के उद्धरण संकलन, भूमिका लेखन आदि सभी का लक्ष्मण प्रणित विद्वान् श्रीयुग श्रीचन्द्र जी मुराना को सौंपा गया। श्री मुराना जी गुरुदेव श्री के मार्गदर्श एवं विचारों से अतिनिकट सम्पर्क में हैं। गुरुदेव श्री के मार्गदर्श में उन्होंने अत्यधिक श्रम करके यह विद्वत्सापूर्ण तथा सर्व-सुलभ एवं शिक्षणयोग्य विवेचन तैयार किया है। इस विवेचन में एक



# प्रकाशकीय

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति के विभिन्न उद्देश्यों में से एक प्रमुख एवं रचनात्मक उद्देश्य है—जैनधर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना। संस्था के मार्गदर्शक परमश्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज स्वयं एक महान् विद्वान्, आशुकवि तथा जैन आगम तथा दर्शन के मर्मज्ञ हैं और उन्हीं के मार्गदर्शन में संस्था की विभिन्न लोकोपकारी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। गुरुदेवश्री साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं, अनुरागी भी हैं। उनकी प्रेरणा से अब तक हमने प्रवचन, जीवनचरित्र, काव्य, आगम तथा गम्भीर विवेचनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अब विद्वानों एवं तत्त्वजिज्ञासु पाठकों के सामने हम उनका चिर प्रतीक्षित ग्रन्थ 'कर्मग्रन्थ' विवेचन युक्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

कर्मग्रन्थ जैनदर्शन का एक महान् ग्रन्थ है। इसमें जैन तत्त्वज्ञान का सर्वोच्च विवेचन समाया हुआ है। पूज्य गुरुदेव श्री के निर्देशन में प्रसिद्ध संपादक श्रीभुव् श्रीचन्द्र जी मुराना एवं उनके सहयोगी श्री देवकुमार जी जैन ने सितंबर १९६१ का मसूदा सम्पादन किया है। तपस्वीवर श्री रजतमुनि जी एवं विद्याविनोदो श्री मुक्तमुनिजी की प्रेरणा से यह विराट् कार्य समय पर मसूदा रूप में सम्पन्न हो रहा है। हम सभी विद्वानों, मुनिवरों एवं सहयोगी उदार सज्जनों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं कि हम इस महान् ग्रन्थ के पूर्ण संपादन को पाठकों के समक्ष रख सकें। विद्वानों एवं जिज्ञासु पाठकों ने इसका स्वागत किया है। अब यह सट्टवा एवं अन्तिम भाग भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

इसके साथ ही इस महान् कर्मग्रन्थ की समाप्ति हो गई है। अब सभी पाठकों के समक्ष है। विद्याभुवन इनमें लाभ उठायेंगे, इसी विश्वास के साथ—

विनीत, मन्त्री—

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति









प्रत्येक गुणस्थान में बंध प्रकृतियों की संख्या का संकेत किया है। इसठवीं गाथा में तीर्थङ्कर नाम, देवायु और नरकायु इनका सत्त्व तीन-तीन गतियों में ही होता है, किन्तु इनके सिवाय शेष प्रकृतियों की सत्ता सब गतियों में पाई जाती है। इसके बाद की दो गाथाओं में अन्तानुबन्धी और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपगमन और क्षण के स्वामी का निर्देशन करके चौसठवीं गाथा में श्लोकादि के क्षण के विशेष नियम की सूचना दी है। इसके बाद पैंसठ से लेकर उनहत्तरवीं गाथा तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में प्रकृतियों के वेदन एवं उदय मय्यन्धी विवेचन करने के अनन्तर सत्तरवीं गाथा में सिद्धों के गुण का वर्णन किया है।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्णन विषय का कथन हो जाने के पश्चात् दो गाथाओं में उपसंहार और लघुता प्रकट करते हुए ग्रन्थ समाप्त किया गया है।  
कर्म साहित्य में सप्ततिका का स्थान

अब तक के प्राप्त प्रमाणों में यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन परम्पराओं में उपलब्ध कर्म-साहित्य का आलेखन अग्रायणीय पूर्व की पंचमी वस्तु के चौथे प्रामूत और जानप्रवाद तथा कर्मप्रवाद पूर्व के आधार में हुआ है। अग्रायणीय पूर्व के आधार से षट्संज्ञागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन ग्रन्थों का संकलन हुआ और जानप्रवाद पूर्व की दसवीं वस्तु के चौथे प्रामूत के आधार से कपायप्रामूत का संकलन किया गया है।

उक्त ग्रन्थों में से कर्मप्रकृति ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में तथा कपायप्रामूत और षट्संज्ञागम दिगम्बर परम्परा में माने जाते हैं तथा कुछ पाठभेद के साथ शतक और सप्ततिका—ये दोनों ग्रन्थ दोनों परम्पराओं में माने जाते हैं।

सप्ततिका या दशोर्ध्व की संख्या के आधार से ग्रन्थ का नाम रखने की परि-  
भाषा प्राचीन काल से बनी आ रही है। जैसे कि आचार्य शिवधामं कृत 'शतक';  
आचार्य विद्वत्केय कृत शक्तिशिला प्रकरण; आचार्य हरिभद्रसूत्रि कृत पंचाशक  
प्रकरण, विद्वत्केय कृत शक्तिशिला प्रकरण, शोडशक प्रकरण, अष्टक प्रकरण, आचार्य  
विद्वत्केय कृत शक्तिशिला प्रकरण आदि अनेकानेक रचनाओं की उदाहरण के  
रूप में उद्धृत किया जा सकता है। सप्ततिका का नाम भी इसी आधार से रखा  
जा सकता है। यह ग्रन्थ कर्मप्रकृत की कहने का कारण यह है कि वर्तमान में  
ये दो ग्रन्थों का एकत्र नाम रखा जाता है।



में मान ली गई है। परन्तु हमने श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला के टीका सहित सप्ततिका को प्रमाण माना है और अन्त की दो गाथाएँ वर्ण्य विषय के वाद आई हैं, अतः उनकी गणना नहीं करने पर ग्रन्थ का नाम सप्ततिका सार्थक सिद्ध होता है।

### ग्रन्थकर्ता

नवीन पाँच कर्मग्रन्थ और उनकी स्वोपज्ञ टीका के प्रणेता आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रमूरि का विस्तृत परिचय प्रथम कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना में दिया जा चुका है। अतः यहाँ सप्ततिका के कर्ता के बारे में ही विचार करते हैं।

सप्ततिका के रचयिता कौन थे, उनके माता-पिता कौन थे, उनके दीक्षा गुरु और विद्या गुरु कौन थे, अपने जीवन से किस भूमि को पवित्र बनाया था आदि प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं। इस समय सप्ततिका और उसकी जो टीकाएँ प्राप्त हैं, वे भी कर्ता के नाम आदि की जानकारी कराने में महायत्ना नहीं देती हैं।

सप्ततिका प्रकरण मूल की प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति में चन्द्रपि महत्तर के नाम से गमिन निम्नलिखित गाथा देखने को मिलती है—

गाह्यं सपरीए चंदमहत्तरमयाणुसारीए ।  
टोगाद निषमियाणं एगुणा होद नउई उ ॥

लेकिन यह गाथा भी चन्द्रपि महत्तर को सप्ततिका के रचयिता होने की सहाय्य नहीं देती है। इस गाथा से इतना ही ज्ञात होता है कि चन्द्रपि महत्तर ने इसका अनुकरण करने वाली टीका के आधार से सप्ततिका की गाथाएँ (७० : ७१) सवागी (२६) हुई हैं। इस गाथा से यही उल्लेख किया गया है कि सप्ततिका में गाथाओं की वृद्धि का कारण क्या है? किन्तु कर्ता के बारे में इस भी नहीं कहा गया है। आचार्य मानवगिरि ने भी अपनी टीका के आदि और अन्त से इसके बारे में कुछ भी सूचित नहीं किया है। इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता के बारे में निरन्तर रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

चन्द्रपि महत्तर ग्रन्थों में श्री नममंजय की रचना की है और उसमें सप्ततिका के अन्त में गमिन श्लोक, सप्ततिका, कथाय-प्राभृत, मत्तुर्म और सप्ततिका के अन्त में चन्द्रपि महत्तर ने पूर्व हो गए आचार्य कृति का



में भी निर्देशित करते हैं कि अल्पश्रुत वाले अल्पज्ञ मैंने जो कुछ भी बंधविधान का सार कहा है, उसे बंधमोक्ष की विधि में निपुण जन पूरा करके कथन करें।

इसके अतिरिक्त उक्त गाथाओं में णिस्संद, अप्पागम, अप्पसुयमंदमइ, पूरे-ज्जणं, परिणहंतु—ये पद भी ध्यान देने योग्य हैं।

इन दोनों ग्रंथों में यह समानता अनायास ही नहीं है। ऐसी समानता उन्हीं ग्रंथों में देगने को मिलती है या मिल सकती है, जो एक कर्तृक हों या एक-दूसरे के आधार से निने गये हों। इससे यह फलितार्थ निकलता है कि बहुत सम्भव है कि शतक और सप्ततिका एक ही आचार्य की कृति हों। शतक की शृणि में आचार्य शिवशर्म को उसका कर्ता बतलाया है। ये वे ही आचार्य शिवशर्म हो सकते हैं, जो कर्मप्रकृति के कर्ता माने गए हैं। इस प्रकार विचार करने पर कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन तीनों ग्रंथों के एक ही कर्ता सिद्ध होते हैं।

यदि अब कर्मप्रकृति और सप्ततिका का मिलान करते हैं, तब दोनों की रचना एक आचार्य के द्वारा की गई हो, यह प्रमाणित नहीं होता है। क्योंकि इन दोनों ग्रंथों में विरुद्ध दो मतों का प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि सप्ततिका में अनन्तानुबन्धी चतुष्क को उपशम प्रकृति बतलाया है, किन्तु कर्मप्रकृति के उपशमता प्रकरण में अनन्तानुबन्धी चतुष्क की उपशम विधि और अन्तःकरण विधि का निरोध किया है। अतएव सप्ततिका के कर्ता के बारे में निश्चय करना अशक्य-सा प्रतीत होता है।

यह भी सम्भव है कि इनके संकलनकर्ता एक ही आचार्य हों और इनका सम्बन्ध निम्न दो आधारों से किया गया हो। जो कुछ भी हों, किन्तु उक्त आधारों के सम्बन्ध ही सप्ततिका के कर्ता शिवशर्म आचार्य हों, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता कौन हैं, आचार्य शिवशर्म हैं या आचार्य कर्मप्रकृति, यह हमें पता नहीं चलता—यह हमें कोई मर्यादना है—निश्चयपूर्वक कहना नहीं सकते। यह प्रमाणित हो जा सकता है कि कोई भी इनके कर्ता हों, अन्य बातें हैं और अभी कारण अनेक कारणों से आचार्यों ने हम पर माध्य, अन्य-





टीका का नाम	परिमाण	कर्ता	रचनाकाल
अन्तर्माध्य गायत्रि	गायत्रि १०	अज्ञात	अज्ञात
माध्य	गायत्रि १६१	अभयदेवसूरि	वि० १२-१३वीं श.
चूर्णि	पत्र १३२	अज्ञात	अज्ञात
चूर्णि	श्लोक २३००	चन्द्रपि महत्तर	अनु. ७वीं श.
वृत्ति	श्लोक ३७८०	मलयगिरिसूरि	वि० १२-१३वीं श.
माध्यवृत्ति	श्लोक ४१५०	मेरुतुंग सूरि	वि० सं० १४४६
टिप्पण	श्लोक ५७०	रामदेवगण	वि० १२वीं. श.
अथसूरि		गुणरत्न सूरि	वि० १५वीं. शता.

उनमें से चन्द्रपि महत्तर की चूर्णि और आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। हम हिन्दी व्याख्या में आचार्य मलयगिरि सूरि की वृत्ति का उपयोग किया गया है।

### टीकाकार आचार्य मलयगिरि

मलयगिरि के रचयिता के समान ही टीकाकार आचार्य मलयगिरि का परिचय भी अत्यन्त सही होता है कि उनकी जन्मभूमि, माता-पिता, गच्छ, टीका-रस, विद्या-सुख आदि कीजिये। उनके विद्याभ्यास, ग्रन्थरचना और विहार-भक्ति के विवरण यहाँ हैं। उनका विषय-परिवार था या नहीं, आदि के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। परन्तु कुमारपाल प्रबन्ध में आगत उल्लेख से उनके आचार्य जेयपद और महाराज कुमारपाल के समकालीन होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

आचार्य मलयगिरि ने दोष ग्रन्थों को टाकाते विनोद साहित्यकोष को प्रकाशित किया है। श्री जेय मलयगिरि ग्रन्थमाला, माधनगर द्वारा प्रकाशित है। आचार्य मलयगिरि द्वारा रचित टीकाग्रन्थों की संख्या करीब २५ की

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

भेद हो सकता है। फिर भी ये मान्यता-भेद सम्प्रदाय-भेद पर आधारित नहीं है। इसी प्रकार कहीं-कहीं वर्णन करने की शैली में भेद होने से गाथाओं में अन्तर आ गया है। यह अन्तर उपशमना और क्षपण प्रकरण में देखने को मिलता है।

इस प्रकार यद्यपि इन दोनों सप्ततिकाओं में भेद पड़ जाता है, तो भी ये दोनों एक उद्गम स्थान से निकल कर और बीच-बीच में दो धाराओं से विभक्त होती हुई अन्त में एक रूप हो जाती हैं।

सप्ततिका के बारे में प्रायः आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला जा चुका है, अतः अब और अधिक कहने का प्रसंग नहीं है।

इस प्रकार प्राक्तन्यों के रूप में कर्मसिद्धान्त और कर्मग्रन्थों के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्वद्गण से सानुरोध आग्रह है कि कर्मसाहित्य का विशेष प्रचार एवं अध्ययन अध्यापन के प्रति विशेष लक्ष्य देने की कृपा करें।

—श्रीचन्द्र सुराना

—देवकुमार जैन





मूल कर्मों के बंधस्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	६
मूलकर्मों के बंधस्थानों आदि का विवरण	८
मूलकर्मों के उदयस्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	१०
उदयस्थान आदि का विवरण	१२
मूल कर्मों के सत्तास्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	१४
सत्तास्थान आदि का विवरण	१७
पाया ३	१७-२२
मूल कर्मों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेध भंगों का निर्देश	१८
मूल कर्मों के उक्त संवेध भंगों का स्वामी और काल सहित विवरण	२०
पाया ४	२२-२७
मूल कर्मों के जीवस्थानों में संवेध भंग	२२
आदि के तैरह जीवस्थानों के भंगों का विवरण	२४
मंगी पंचेन्द्रिय जीवस्थान के संवेध भंगों का विवरण तथा उनका स्पष्टीकरण	२४
भौत जीवस्थानों के संवेध भंगों का विवरण	२६
पाया ५	२७-३०
मूल कर्मों के गुणस्थानों में संवेध भंग	२८
मूल प्रकृतियों के गुणस्थानों में बंध उदय सत्ता संवेध भंगों का विवरण	२८
पाया ६	३०-३४
मूल कर्मों के गुणस्थानों में बंध उदय सत्ता संवेध भंगों का विवरण	३२



गाथा २६	१५८-१७
नामकर्म के उदयस्थान	१६
नामकर्म के उदयस्थानों के स्वामी और उनके भगों का निर्देश	१६
गाथा २७, २८	१७६-१८
नामकर्म के उदयस्थानों के भग	१८
उदयस्थानों के भगों का दर्शक विवरण	१८
गाथा २९	१८४-१८७
नामकर्म के सत्तास्थान	१८४
नामकर्म के सत्तास्थान और गो० कर्मकाण्ड का अभिमत	१८६
गाथा ३०	१८७-१८८
नामकर्म के बंध आदि स्थानों के संवेध कथन की प्रतिज्ञा	१८८
गाथा ३१, ३२	१८८-२०६
ओष में नामकर्म के संवेध का विचार	१९०
नामकर्म के बंधादि स्थान व उनके भगों का दर्शक विवरण	२०४
गाथा ३३	२०६-२१०
प्रीतिस्थानों और गुणस्थानों में उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थानों के भगों का विचार प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा	२१०
गाथा ३४	२१०-२१३
प्रीतिस्थान में शानावरण और अन्तरायकर्म के बंधादि स्थानों के भगों का विचार	२१३
गाथा ३५	२१३-२२१
प्रीतिस्थानों के दर्शनावरण कर्म के बंधादि स्थानों के संवेध कथन का विचार	२१३
प्रीतिस्थानों के दर्शनीय, आवृ और गोपकर्म के बंधादि स्थानों	२१३





गाथा ४२

२६६-२७१

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का विचार

२७

गाथा ४३, ४४, ४५

२७२-२७

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का विचार

२७

गाथा ४६

२७६-२८

गुणस्थानों की अपेक्षा उदयस्थानों के मंग

२७

गुणस्थानों की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों का दर्शक  
विवरण

२८

गाथा ४७

२८३-३१

योग, उपयोग और लेश्याओं में संवेध भंगों की सूचना

२९

योग की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयविकल्पों का विचार

२९

योग की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

योग की अपेक्षा गुणस्थानों में पदवृन्दों का विचार

२९

योग की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

उपयोगों की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयस्थानों का विचार

२९

उपयोगों की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का विचार

२९

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

लेश्याओं की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयस्थानों का विचार

२९

लेश्याओं की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का विचार

२९

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

गाथा ४८

३०३-

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के बंधस्थान

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों के संवेध भंगों का

विवरण

$$x^2 + y^2 = z^2$$

$$x^2 + y^2 = z^2$$

अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों का विचार	३४३
उपशान्तमोह, क्षीणमोह गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों का विचार	३४५
सयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों का विचार व उनके संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३४६
अयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों के संवेध का विचार व उनका दर्शक विवरण	३४७

#### गाथा ५१

३४८-३६१

गतिमार्गणा में नाम कर्म के बंधादि स्थानों का विचार	३४८
नरक आदि गतियों में वन्धस्थान	३४९
नरकगति में संवेध भंगों का विचार	३५०
नरकगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५१
निर्यंचगति में संवेध भंगों का विचार	३५२
निर्यंचगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५३
मनुष्यगति में संवेध भंगों का विचार	३५६
मनुष्यगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५७
देवगति में संवेध भंगों का विचार	३६०
देवगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६०

#### गाथा ५२

३६१-३७०

अनिवृत्ति मार्गणा में नामकर्म के बंधादिस्थान	३६१
क्षीणमोह मार्गणा में संवेध भंगों का विचार	३६३
क्षीणमोह मार्गणा में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६३
उपशान्तमोह के संवेध भंगों का विचार	३६४
उपशान्तमोह में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६४
सयोगिकेवली में संवेध भंगों का विचार	३६६
सयोगिकेवली में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६६



गाथा ५६

३८८-३९२

अनिवृत्तिवादर से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक की  
बंधयोग्य प्रकृतियाँ और उनका कारण ३८६  
गुणस्थानों में बंध प्रकृतियों का दर्शक विवरण ३९१

गाथा ६०

३९२-३९३

मार्गणाओं में बन्धस्वामित्व को जानने की सूचना ३९२

गाथा ६१

३९३-३९४

गतियों में प्रकृतियों की सत्ता का विचार ३९३

गाथा ६२

३९४-४२०

उपशम श्रेणी के विचार का प्रारम्भ ३९४

अनन्तानुबंधी चतुष्क की उपशम विधि ३९६

अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना विधि ४०४

दर्शनमोहनीय की उपशमना विधि ४०८

चारित्र्यमोहनीय की उपशमना विधि ४०९

उपशमश्रेणि से च्युत होकर जीव किस-किस गुणस्थान को ४१६

प्राप्त होता है, इसका विचार ४२०

एक मन में कितनी बार उपशमश्रेणि पर आरोहण हो सकता है ४२०

गाथा ६३

४२०-४३१

क्षयकश्रेणि के विचार का प्रारंभ ४२१

क्षयकश्रेणि का आरम्भक कौन होता है ४२३

क्षयकश्रेणि में क्षय होने वाली प्रकृतियों का निर्देश व तत्सम्बन्धी ४२३

विवरण ४२३

पुनर्प्रेर के प्राप्ताद से क्षयकश्रेणि का वर्णन ४२५

गाथा ६४

४३३-४३८

पुनर्प्रेर चतुष्क के क्षय के समय का वर्णन ४३३

पुनर्प्रेर की व्याख्या और उसके भेद ४३८

20

21

22

23

24

25

26

27

28

## परिशिष्ट

- परिशिष्ट १—षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथायें १
- परिशिष्ट २—छह कर्मग्रन्थों में आगत पारिभाषिक शब्दों का कोष ६
- परिशिष्ट ३—कर्मग्रन्थों की गाथाओं एवं व्याख्या में आगत  
पिण्डप्रकृति-सूचक शब्दों का कोष ६८
- परिशिष्ट ४—सप्ततिका प्रकरण की गाथाओं का अकारादि  
अनुक्रम ७७
- परिशिष्ट ५—कर्मग्रन्थों की व्याख्या में प्रयुक्त सहायक ग्रन्थों  
की सूची । ८१

## तालिकाएँ

- मार्गगाओं में मोहनीयकर्म के बंध, उदय, सत्ता स्थानों व उनके  
संवेध मंगों का दर्शक विवरण ३७५
- मार्गगाओं में नाम कर्म के बंध, उदय, सत्ता स्थानों और उनके  
संवेध मंगों का दर्शक विवरण ३७५

10

11

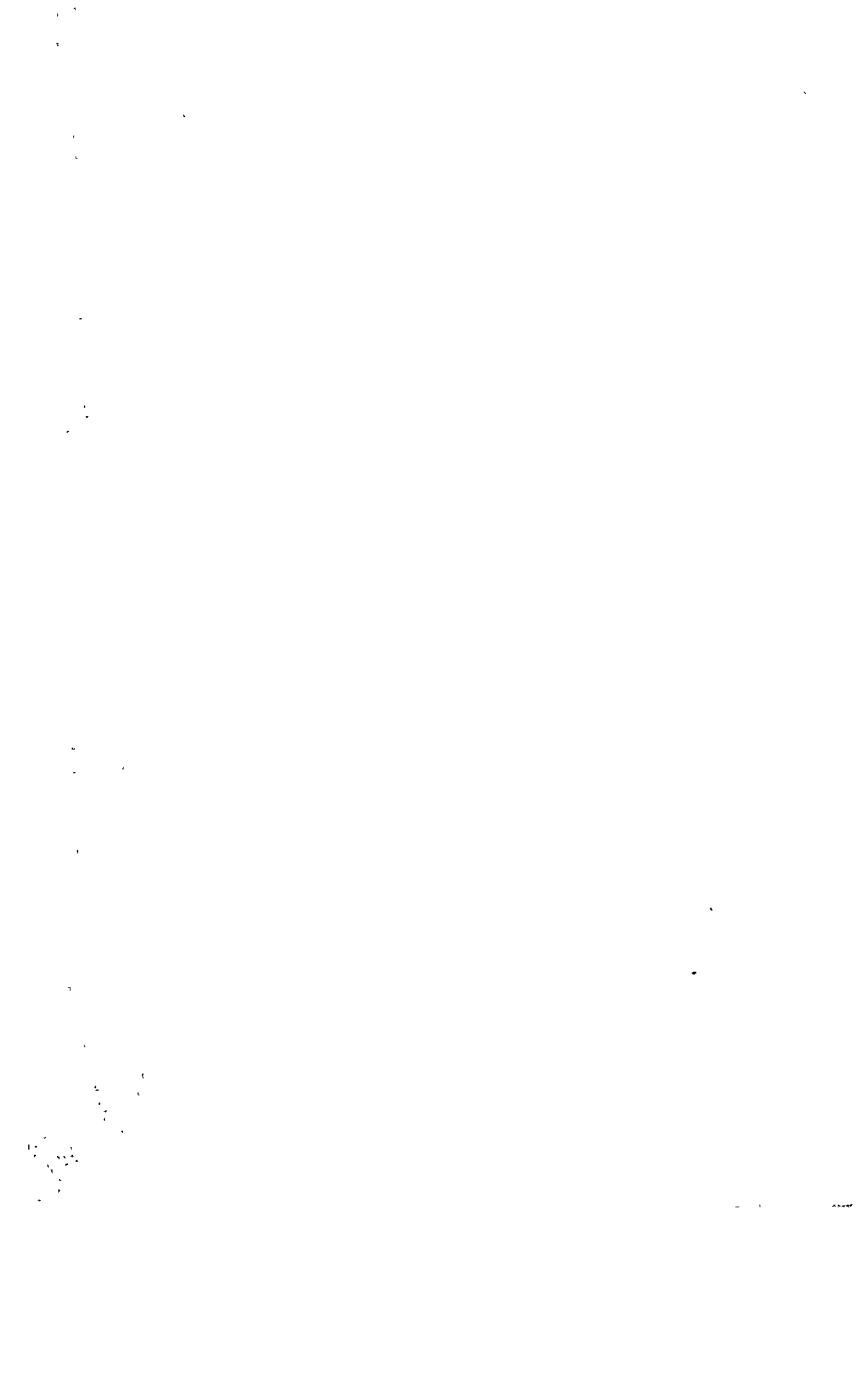
12

13

14

15







अबाधित होती है। विद्वानों को निश्चिन्त होकर ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये। इसीलिये आचार्य मतप-  
गिरि ने गाथागत 'सिद्धपएहि' सिद्धपद के निम्नलिखित दो  
किये हैं—

जिन ग्रन्थों के सब पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने व  
होने से सुप्रतिष्ठित हैं, जिनमें निहित अर्थगाम्भीर्य को किसी भी प्र  
से विकृत नहीं किया जा सकता है, अथवा शंका पैदा नहीं होती है,  
ग्रन्थ सिद्धपद कहे जाते हैं।<sup>१</sup> अथवा जिनागम में जीवस्थान, गु  
स्थान रूप पद प्रसिद्ध हैं, अतएव जीवस्थानों, गुणस्थानों का व  
कराने के लिये गाथा में 'सिद्धपद' दिया गया है।<sup>२</sup>

उक्त दोनों अर्थों में से प्रथम अर्थ के अनुसार 'सिद्धपद' शब्द क  
प्रकृति आदि प्राभृतों का वाचक है, क्योंकि इस सप्ततिका ना  
प्रकरण का विषय उन ग्रन्थों के आधार से ग्रन्थकार ने संक्षेप रूप  
निबद्ध किया है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये गाथा के च  
चरण में संकेत दिया गया है—'नीसंदं दिट्ठिवायस्स'—दृष्टिवाद  
महार्णव की एक बृंद के समान है। दृष्टिवादरूपी महार्णव की  
बृंद जैसा बतलाने का कारण यह है कि दृष्टिवाद नामक वारहवें  
के परिक्रम, मूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका यह पाँच भेद  
उनमें से पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं। उनमें दूसरे पूर्व  
नाम अग्रायणीय है और उसके मुख्य चौदह अधिकार हैं, जिन्हें क

१. निबद्ध—प्रतिष्ठितं चानयितुमशक्यमित्येकोऽर्थः। ततः सिद्धानि पदानि  
ग्रन्थेषु ते सिद्धपदाः।

२. अत्रोक्तं सिद्धादि—प्रसिद्धानि यानि जीवस्थान-गुणस्थानरूपानि  
सर्वत्र सिद्धपदानि, तेन्यः नान्याश्चित्य तेषु विषय इत्यर्थः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३



निर्देश करते हुए कहा है—‘बंधोदयसंतपयडिठाणाणं वोच्छे’—बंध उदय और सत्ता प्रकृति स्थानों का कथन किया जा रहा है। जिनके लक्षण इस प्रकार हैं—लोहपिंड के प्रत्येक कण में, जैसे अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही कर्म-परमाणुओं का आत्मप्रदेशों के साथ-परमाणु जो एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध होता है, उसे बंध कहते हैं।<sup>१</sup> विपाक अवस्था को प्राप्त हुए कर्म-परमाणुओं के भोग को उदय कहते हैं। बंध-समय से या संक्रमण-समय से लेकर जब तक उन कर्म-परमाणु का अन्य प्रकृतिरूप से संक्रमण नहीं होता या जब तक उनकी निर्जन्म नहीं होती, तब तक उनका आत्मा के साथ संबद्ध रहने को सत्ता कहते हैं।<sup>२</sup>

स्थान शब्द समुदायवाची है, अतः प्रकृतिस्थान पद से दो, ती आदि प्रकृतियों के समुदाय को ग्रहण करना चाहिये।<sup>३</sup> ये प्रकृतिस्थान बंध, उदय और सत्त्व के भेद से तीन प्रकार के हैं। जिनका ग्रन्थ में विवेचन किया जा रहा है।

गाथा में आगत ‘मुण’ क्रियापद द्वारा ग्रन्थकार ने यह ध्वनि किया है कि आचार्य शिष्यों को सम्बोधित एवं सावधान करके गाथा का व्याख्यान करें। क्योंकि बिना सावधान किये ही अध्या

१ तत्र बंधो नाम—कर्मपरमाणूनामात्मप्रदेशैः सह बह्वययःपिण्डवदन्ते नुमयः । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

२ कर्मपरमाणूनामेव विपाकप्राप्तानामनुमयनमुदयः । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

३ अन्वयमनयात् संक्रमेणारमनामममयाद्वा आरम्य यावत् ते कर्मपरमाणूनामनुमयनं यावत् वा न क्षयमुपगच्छन्ति तावत् तेषां स्वस्थमनुमयः सा सत्ता । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

४ प्रकृतिः स्वभावानि—समुदायाः प्रकृतिस्थानानि द्विष्ट्यादिप्रकृतिमयानि । स्वभावप्रदेशस्य समुदायवाची । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १



इस प्रकार इस गाथा के वाच्यार्थ पर विचार करने पर दो बातों की सूचना मिलती है। प्रथम यह कि इस प्रकरण में मुख्यतया पहले मूल प्रकृतियों और इसके बाद उत्तर प्रकृतियों के बन्ध-प्रकृतिस्थानों उदय-प्रकृतिस्थानों और सत्व-प्रकृतिस्थानों का तथा उनके परस्पर संबंध और उनसे उत्पन्न हुए भंगों का विचार किया गया है। दूसरी बात यह है कि उन भंग-विकल्पों को यथास्थान जीवस्थानों और गुणस्थानों में घटित करके बतलाया गया है।

इस विषय-विभाग को ध्यान में रखकर टीका में सबसे पहला आठ मूल प्रकृतियों के वंश-प्रकृतिस्थानों, उदय-प्रकृतिस्थानों और सत्त्व-प्रकृतिस्थानों का कथन किया गया है। क्योंकि इनका कथन किये बिना आगे की गाथा में बतलाये गये इन स्थानों के संवेधन सरलता से ज्ञान नहीं हो सकता है। साथ ही प्रसंगानुसार इन स्थानों के स्वामी और काल का निर्देश किया गया है, जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

बभ्रुश्याम, श्यामी और उनका काल

कर्मों की मूल प्रकृतियों के निम्नलिखित आठ भेद हैं—१. ज्ञान, २. वसनावरण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाश, ७. मोक्ष और ८. अन्तरात्म। इनके स्वरूप, लक्षण पहले बतलाये जा चुके हैं। मूल कर्म प्रकृतियों के आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, ६

३०५: पञ्चदशसंख्यारामनामसामिहोदयेन भीमनाम् ।

—कर्मप्रकृति चतुर्विधः, पृ० १









काल व्यतीत होने पर संयम धारण करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह होकर सयोगिकेवली हो जाता है, उसके एक प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष, सात माह और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। बन्धस्थानों के भेद, स्वामी और काल प्रदर्शक विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सय	मिश्र गुण. के विना अप्रमत्त गुणस्थान तक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
सात प्रकृतिक	आयु के विना	आदि के नौ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	एक अन्तर्मुहूर्त और छह माह कम तथा पूर्व कोटि का त्रिमास अधिक तेतीस सागर
छह प्रकृतिक	मोह व आयु के विना	सूक्ष्म-संपराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
पाँच प्रकृतिक	देशनोद	११, १२, १३वां गुणस्थान	एक समय	देशोन पूर्वकोटि

बंधस्थान, स्वामी और काल

बंध प्रकृतिस्थानों का कथन करने के पश्चात् अब उदय की ओर से प्रकृतिस्थानों का निरूपण करते हैं कि आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक, इस प्रकार मूल प्रकृतियों की अपेक्षा तीनों उदयस्थान होते हैं।

उक्त तीन प्रकृतिस्थानानि, तथया—अष्टौ सप्त वनयः ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४







जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण काल के व्यतीत होने पर संयम प्राप्त करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह, सयोगिकेवली हो जाते हैं तो वैसे ही आठ वर्ष, सात माह कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये। यहाँ इतनी विशेषता है कि इसमें क्षीणमोह गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त घटा कर उतना काल लेना चाहिये।

उदयस्थानों के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृति	समी	आदि के दस गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	कुछ कम अपाय पुद्गल परावर्त
सात प्रकृति	मोह के बिना	११वाँ, १२वाँ गुणस्थान	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
चार प्रकृति	चार अघाती	१३वाँ, १४वाँ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशों पूर्वकोटि

### सत्तास्थान, स्वामी और काल

ग्रन्थ और उदयस्थानों को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानों को बतलाते हैं। सत्ता प्रकृतिस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृति और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक सत्तास्थान में ज्ञानावरण और अन्तरायपर्यन्त मूल प्रकृतियों का, सात प्रकृतिक सत्तास्थान मोहनीय के निवारण क्षेत्र सात प्रकृतियों और चार प्रकृतिक सत्तास्थान में चार अघाती कर्मों का ग्रहण किया जाता है। इस विहित तात्पर्यपूर्ण यह है कि मोहनीय कर्म के सद्भाव में आठों व ११, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की विद्यमानता में अ

१. सत्ता प्रकृति प्रकृतिस्थानानि । तद्यथा—अष्टौ, सप्त चतस्रः ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ. १





इन तीन सत्तास्थानों में से आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त है, क्योंकि अभव्य के सिर्फ एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थान में किस भी मूल प्रकृति का क्षय नहीं होता है। भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अनादि-सान्त है, क्योंकि क्षपक सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में ही मोहनीय कर्म का समूल उच्छेद कर देता है और उसके बाद क्षीणमोह गुणस्थान में सात प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति होती है और क्षीणमोह गुणस्थान से प्रतिपत्तन नहीं होता है जिससे यह सिद्ध हुआ कि भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि-सान्त है।<sup>१</sup>

सात प्रकृतिक सत्तास्थान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में होता है और क्षीणमोह गुणस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह प्रमाण है। अतः सात प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुह प्रमाण ही है।<sup>२</sup>

चार प्रकृतिक सत्तास्थान सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानों में पाया जाता है और इन गुणस्थानों का जघन्यकाल अन्तर्मुह और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है। अतः चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुह और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये

१ यत्र सर्वप्रकृतिकसत्तास्थानाः, एतस्मात् साष्टानां सत्ता अन्तर्मुहप्रमाणं जघन्यकालं प्रमाणं, सन्तर्मुहप्रमाणं अनादिगण्यमेवमाना ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ११

२ अन्तर्मुह क्षीण सत्तास्थानां सत्ता, सा च जघन्यकालप्रमाणं अन्तर्मुहप्रमाणं, अन्तर्मुहप्रमाणं, क्षीणमोहगुणस्थानात् सत्ता अन्तर्मुहप्रमाणमिति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ११



शब्दार्थ—अट्ठविहसत्तछब्धबंधोसु—अष्टविध, सप्तविध, पट्-  
विध बंध के समय, अट्ठेव—आठों कर्म की, उदयसंताइ—उदय  
और सत्ता, एगविहे—एकविध बंध के समय, तिविगण्पो—तीन  
विकल्प, एगविगण्पो—एक विकल्प, अबंधम्मि—अबन्ध दशा में, बंध  
न होने पर ।

गाथायं—आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध  
होने के समय उदय और सत्ता आठों कर्म की होती है । एक-  
विध (एक का) बंध होते समय उदय व सत्ता की अपेक्षा तीन  
विकल्प होते हैं तथा बंध न होने पर उदय और सत्ता की  
अपेक्षा एक ही विकल्प होता है ।

मिसेयायं—इस गाथा में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता  
संवेध भंगों का कथन किया गया है ।

आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक बंध होने के सम  
आठों कर्मों का उदय और आठों कर्मों की सत्ता होती है—‘अट्ठे  
उदयसंताइ’ । अर्थात् सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के ज  
गिथ गुणस्थान को छोड़कर आयुबंध के समय आठों कर्मों का  
कर सकते हैं अतः उनके आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय व  
आठ प्रकृतिक सत्ता होती है । अनिवृत्तिवादर संपराय गुणस्थान  
के जीव आमुत्तम के बिना योग सात कर्मों का बंध करते हैं वि  
इसके उदय और सत्ता आठों कर्मों की हो सकती है और मूक्षमसंप  
संग आठ व मोक्षणीय कर्म के बिना छह कर्मों का बंध कर  
किरिण इनके भी आठ कर्मों का उदय और सत्ता होती है ।

इस प्रकार से कर्मों की बंध प्रकृतियों में भिन्नता होने पर

एक प्रसंग मानने का कारण यह है कि उपर्युक्त  
प्रमाण हैं और सत्यता का कारण मोक्षणीय कर्म का  
व मोक्षणीय कर्म का उदय है नव उनकी सत्ता अव



तीवें अनिवृत्तिवादेर गुणस्थान में आयुकर्म का बंध नहीं होता अतः वहाँ तो यह दूसरा भंग ही होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि आदि अन्य गुणस्थानवर्ती जीवों के भी सर्वदा आयुकर्म का बंध नहीं होता, अतः वहाँ भी जब आयुकर्म का बंध नहीं होता है तब दूसरा भंग व जाता है। इस भंग का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट द्वा माह और अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेरी सागर है।

तीसरा भंग सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवर्ती जीव को ही होता है क्योंकि इनके आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेष छह कर्मों का बंध होता है। इसका काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

यह तीनों भंग बंधस्थानों की प्रधानता से बनते हैं। अतः इन जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्व में बताये बंधस्थानों के काल अनुसृत्य बतलाया है।

एक प्रकार के अर्थात् एक वेदनीय कर्म का बंध होने पर त्रि विभक्त होते हैं—‘एगविहे त्रिविगण्यो’। जिनका स्पष्टीकरण प्रकार है—

वेदनीय कर्म का बंध ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें—उपशो मोह, क्षीणमोह और मयोजिकेवली, इन तीन गुणस्थानों में होता किन्तु उत्तमानमोह गुणस्थान में सात का उदय और आठ की स क्षीणमोह गुणस्थान में सात का उदय और सात की सत्ता, सर्व वेदनीय गुणस्थान में एक का बंध और चार का उदय, चार की सत्ता होती है। अतः एक—वेदनीय कर्म का बंध होने की स्थिति और सत्ता को अनेकता तीन भंग इस प्रकार प्राप्त होते हैं—  
१. एक—एक बंध, ग्यारहवें उदय और आठ प्र  
सत्ता



इस भंग का जघन्य और उत्कृष्ट काल अयोगिकेवली गुणस्थान के समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समझना चाहिये ।

इस प्रकार मूल प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानों की अपेक्षा संवेध भंग सात होते हैं । स्वामी, काल, सहित उनके विवरण पृष्ठ २३ की तालिका में दिया गया है ।

मूल प्रकृतियों की अपेक्षा बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानों परस्पर संवेध भंगों को बतलाने के पश्चात् अब इन विकल्पो के जीवस्थानों में बतलाते हैं ।

**सत्तद्वन्धवदुदयसंत तेरससु जीवठाणसु ।**

**एगम्मि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥**

शब्दार्थ—सत्तद्वन्ध—सात और आठ का बंध, अदुदयसंत—आठ का उदय, आठ की सत्ता, तेरससु—तेरह में, जीवठाणसु—जीवस्थानों में, एगम्मि—एक (पर्याप्त संज्ञी) जीवस्थान में, पंचभंगा—पांच भंग, दो भंगा—दो भंग, हुंति—होते हैं, केवलिणो—केवली के ।

गायार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानों में सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक बंध में आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता यह दो-दो भंग होते हैं । एक—संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में आदि के पांच भंग तथा केवलज्ञानी के अन्त के दो भंग होते हैं ।

विवरण—संवेध भंगों को जीवस्थानों में बतलाया है । जीवस्थानों का स्वभाव और भेद चौदह कर्मग्रन्थ में बतलाये जा चुके हैं । जिन संज्ञित भंगों में यह है कि जीव अनन्त हैं और उनकी जातियाँ बड़ी हैं वे जिनके समान पर्याप्त रूप धर्मों के द्वारा संग्रह करने योग्य होते हैं, और उनके चौदह भेद किये हैं—

१. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ४. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ५. अज्ञात









पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के पाँच भंग इस प्रकार होते हैं—

बन्ध	८	७	६	१	१
उदय	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

इन पाँच भंगों में से पहला भंग अनिवृत्ति गुणस्थान तक दूसरा भंग अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक, तीसरा भंग उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणि में विद्यमान सूक्ष्मसंपराय संयत, के, चौथा भंग उपशान्तमोह गुणस्थान में और पाँचवा भंग क्षीणमोह गुणस्थान होता है।

यद्यपि केवली जिन भी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं और उनके पाँच भंग गानना चाहिये। लेकिन उनके भंग अलग से बताने के कारण यह है कि केवली जीवों के क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रहते अतः वे संज्ञी नहीं होते हैं। इसीलिये उनके संज्ञित्व का निषेध करने निम्न पाया में उनके भंगों का पृथक् से निर्देश किया है—'दो भंग द्विगोचरिणो'। उनके एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता—यह एक भंग तथा चार प्रकृतिक उदय व चार प्रकृतिक सत्ता, लेकिन बंध एक भी प्रकृति का नहीं, यह दूसरा भंग होता है। पहला भंग सयोगिकेवली के पाया जाता है, वहाँ सिर्फ केवलीय कर्म का ही बंध होता है, किन्तु उदय और सत्ता चार अघाति कर्मों की होती है। दूसरा भंग अयोगिकेवली के होता है। वहाँ इसके एक भी कर्म का बंध न होकर सिर्फ चार अघाति कर्मों का उदय व सत्ता पाई जाती है।



मोह और योग के निमित्त से ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप आत्मा के गुणों की जो तरतमरूप अवस्थाविशेष होती है, उसे गुणस्थान कहते हैं। अर्थात् गुण+स्थान से निष्पन्न शब्द गुणस्थान है और गुण का मतलब है आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण और स्थान यानि उन गुणों की मोह के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के कारण होने वाली तरतम रूप अवस्थायें विशेष।

गुणस्थान के चौदह भेद होते हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—  
१. मिथ्यात्व, २. सासादन सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्र),  
४. अविरत सम्यग्दृष्टि, ५. देशविरत, ६. प्रमत्तविरत, ७. अप्रमत्त-  
विरत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तिवादर, १०. सूक्ष्मसंपराय, ११. उप-  
शान्तमोह, १२. क्षीणमोह, १३. सयोगिकेवली, १४. अयोगिकेवली।  
इन चौदह भेदों में आदि के बारह भेद मोहनीय कर्म के उदय, उपशम  
आदि के निमित्त से होते हैं तथा तेरहवाँ सयोगिकेवली और चौदहवाँ  
अयोगिकेवली यह दो अन्तिम गुणस्थान योग के निमित्त से होते  
हैं। सयोगिकेवली गुणस्थान योग सद्भाव की अपेक्षा से और अयोगि-  
केवली गुणस्थान योग के अभाव की अपेक्षा से होता है।

उक्त चौदह गुणस्थानों में से आठ गुणस्थानों में बंध, उदय और  
गता सत् कर्मों का अलग-अलग एक-एक भंग होता है—‘अदृष्टसु एण-  
विगमो’। शिवात्ता स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्र), अपूर्वकरण, अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसं-  
पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली, इन आठ  
गुणस्थानों में बंध, उदय और गता प्रकृति स्थानों का एक-एक भंग  
होता है। इनमें एक-एक भंग होने का कारण यह है कि सम्यग्मिथ्या-  
दृष्टि, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिवादर इन तीन गुणस्थानों में आपुन-  
के दोष अन्तर्गत नहीं होने के कारण सात प्रकृतिक बंध, उदय  
और गता और आठ प्रकृतिक गता यह एक ही भंग होता है।

1.  $\frac{1}{2}$   
 2.  $\frac{1}{3}$   
 3.  $\frac{1}{4}$   
 4.  $\frac{1}{5}$   
 5.  $\frac{1}{6}$   
 6.  $\frac{1}{7}$   
 7.  $\frac{1}{8}$   
 8.  $\frac{1}{9}$   
 9.  $\frac{1}{10}$   
 10.  $\frac{1}{11}$   
 11.  $\frac{1}{12}$   
 12.  $\frac{1}{13}$   
 13.  $\frac{1}{14}$   
 14.  $\frac{1}{15}$   
 15.  $\frac{1}{16}$   
 16.  $\frac{1}{17}$   
 17.  $\frac{1}{18}$   
 18.  $\frac{1}{19}$   
 19.  $\frac{1}{20}$   
 20.  $\frac{1}{21}$   
 21.  $\frac{1}{22}$   
 22.  $\frac{1}{23}$   
 23.  $\frac{1}{24}$   
 24.  $\frac{1}{25}$   
 25.  $\frac{1}{26}$   
 26.  $\frac{1}{27}$   
 27.  $\frac{1}{28}$   
 28.  $\frac{1}{29}$   
 29.  $\frac{1}{30}$   
 30.  $\frac{1}{31}$   
 31.  $\frac{1}{32}$   
 32.  $\frac{1}{33}$   
 33.  $\frac{1}{34}$   
 34.  $\frac{1}{35}$   
 35.  $\frac{1}{36}$   
 36.  $\frac{1}{37}$   
 37.  $\frac{1}{38}$   
 38.  $\frac{1}{39}$   
 39.  $\frac{1}{40}$   
 40.  $\frac{1}{41}$   
 41.  $\frac{1}{42}$   
 42.  $\frac{1}{43}$   
 43.  $\frac{1}{44}$   
 44.  $\frac{1}{45}$   
 45.  $\frac{1}{46}$   
 46.  $\frac{1}{47}$   
 47.  $\frac{1}{48}$   
 48.  $\frac{1}{49}$   
 49.  $\frac{1}{50}$   
 50.  $\frac{1}{51}$   
 51.  $\frac{1}{52}$   
 52.  $\frac{1}{53}$   
 53.  $\frac{1}{54}$   
 54.  $\frac{1}{55}$   
 55.  $\frac{1}{56}$   
 56.  $\frac{1}{57}$   
 57.  $\frac{1}{58}$   
 58.  $\frac{1}{59}$   
 59.  $\frac{1}{60}$   
 60.  $\frac{1}{61}$   
 61.  $\frac{1}{62}$   
 62.  $\frac{1}{63}$   
 63.  $\frac{1}{64}$   
 64.  $\frac{1}{65}$   
 65.  $\frac{1}{66}$   
 66.  $\frac{1}{67}$   
 67.  $\frac{1}{68}$   
 68.  $\frac{1}{69}$   
 69.  $\frac{1}{70}$   
 70.  $\frac{1}{71}$   
 71.  $\frac{1}{72}$   
 72.  $\frac{1}{73}$   
 73.  $\frac{1}{74}$   
 74.  $\frac{1}{75}$   
 75.  $\frac{1}{76}$   
 76.  $\frac{1}{77}$   
 77.  $\frac{1}{78}$   
 78.  $\frac{1}{79}$   
 79.  $\frac{1}{80}$   
 80.  $\frac{1}{81}$   
 81.  $\frac{1}{82}$   
 82.  $\frac{1}{83}$   
 83.  $\frac{1}{84}$   
 84.  $\frac{1}{85}$   
 85.  $\frac{1}{86}$   
 86.  $\frac{1}{87}$   
 87.  $\frac{1}{88}$   
 88.  $\frac{1}{89}$   
 89.  $\frac{1}{90}$   
 90.  $\frac{1}{91}$   
 91.  $\frac{1}{92}$   
 92.  $\frac{1}{93}$   
 93.  $\frac{1}{94}$   
 94.  $\frac{1}{95}$   
 95.  $\frac{1}{96}$   
 96.  $\frac{1}{97}$   
 97.  $\frac{1}{98}$   
 98.  $\frac{1}{99}$   
 99.  $\frac{1}{100}$

पहला भंग आयुकर्म के बंधकाल में होता है तथा दूसरा विकल्प आयुकर्म के बंधकाल के अतिरिक्त सर्वदा पाया जाता है।<sup>१</sup>

चौदह गुणस्थानों के भंगों की संग्राहक गाथायें निम्न हैं एवं विवरण पृष्ठ ३१ की तालिका में दिया गया है।

मिस्त अपुच्चा वायर सगबंधा छच्च बंधए सुहमो ।  
उवसंताई एगं अबंधगोऽजोगि एगेगं ॥  
मिच्छासायणअविरय देसपमत्त अपमत्तया चेव ।  
सत्तट्ठ बंधगा इह, उदया संता य पुण एए ॥  
जा सुहुमो ता अट्ठ उ उदए संते य होंति पयडोओ ।  
सत्तट्ठयसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेमु ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार मूल प्रकृतियों की अपेक्षा बंध, उदय और सत्त प्रकृतिस्थानों के संवेध भंगों और उनके स्वामियों का कथन करने पदनात् अब उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा बंध, उदय और सत्त प्रकृतिस्थानों के संवेध भंगों का कथन करते हैं। पहले ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के संवेध भंग बतलाते हैं।

### उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंग

ज्ञानावरण, अंतराय कर्म

बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।  
बंधोवरमे वि तहा उदसंता हुंति पंचेव ॥६॥<sup>३</sup>

१. भंगप्रमाणे बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एगं विकल्प आयुर्वन्धका  
एवम् आयुर्वन्धकोऽपि माघदमायस्थानगमनवाद् आयुर्वन्ध उपपद्यते । तथा स  
विश्वे धनः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता एगं विकल्प आयुर्वन्धका  
सुम्नस विवर्तन मर्त्यस्य मर्त्यस्य । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ११
२. संवेधस्थाने विविध मन्त्रविद्या विष्णुस्य, गा० ८, ६, १० ।

३. बंधोदयसंतंसा

बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।

बंधोवरमे वि तहा उदसंता हुंति पंचेव ॥

—श्री० कर्मकांड १





शब्दार्थ—बंधोदयसंतंसा—बंध, उदय और सत्ता रूप अंश,  
नाणावरणंतराद्गु—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म में, पंच—पांच,  
बंधोदयमे—बंध के अभाव में, वि—भी, तथा—तथा, उदसंता—  
उदय और सत्ता, हंति—होती है, पंचैव—पांच की ।

गाथायं—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म में बंध, उदय और सत्ता रूप अंश पाँच प्रकृतियों के होते हैं। बंध के अभाव में भी उदय और सत्ता पाँच प्रकृत्यात्मक ही होती है।

विशेषाद्यं—पूर्व में मूल प्रकृतियों के सामान्य तथा जीवस्थान व गुणस्थानों की अपेक्षा संवेध भंगों को बतलाया गया है। अब इस गाथा में उन मूल कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंगों का कार्य प्रारम्भ करते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गो और अन्तराय यह आठ मूल कर्मप्रकृतियाँ हैं। इनके क्रमशः पाँच, दो, अष्टाईस, चार, व्यालीस, दो और पाँच भेद होते हैं। उन मूल कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ कहलाती हैं। इनके नाम आदि का विवेचन प्रथम कर्मग्रन्थ में किया गया है।

इस गाथा में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की उत्तर प्रकृति के भंगों को बतनाया है।

ज्ञानावरण की पाँचों उत्तर प्रकृतियां तथा अंतराय की पाँचों उत्तर प्रकृतियां मिल गिताकर इन दस प्रकृतियों का बंध दसवें सूक्ष्ममंषा गुणस्थान तक होता है तथा उनका बंध-विच्छेद दसवें गुणस्थान के अन्त में होता है तथा अन्त में बंध-विच्छेद बारहवें गुणस्थान के अन्त में होता है।

संसारमय और अंतराय कर्म की पाप-पावन प्रकृति रूप है।  
परन्तु जो साधू सुखसाधनाना गुणस्थान पर्यन्त है और बंध का अंत  
जो वह भी उस दीर्घ की समाप्तमार्ग और क्षीणमार्ग में उदभव  
आवृत्ति का पाप-पावन ही है ।



मंग क्रम	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान	जीवस्थान	काल	
						जघन्य	उत्कृष्ट
१	५	५	५	१ से १० गुणस्थान	१४	अन्तर्मुहूर्त	देशीय अपाध पुद्गल परावर्त
२	०	५	५	११ वां १२ वां	१ संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंग  
बतलाने के बाद अब दर्शनावरण कर्म के संवेध भंगों को बतलाते हैं।

### दर्शनावरण कर्म

बंधस्त य संतस्त य पगइट्ठाणाइं तिन्नि तुल्लाइं ।  
उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं दंसणावरणं ॥१॥

शब्दार्थ—बंधस्त—बंध के, य—और, संतस्त—सत्ता ये  
य—और, पगइट्ठाणाइं—प्रकृतिस्थान, तिन्नि—तीन, तुल्लाइं—  
समान, उदयट्ठाणाइं—उदयस्थान, दुवे—दो, चउ—चार, पणगं—  
पाँच, दंसणावरणे—दर्शनावरण कर्म में ।

- १ पक्षी मंग का जो उत्कृष्ट काल देशीय अपाध पुद्गल परावर्त व  
है, वह काल के सादि-मान्त विकल्प की अपेक्षा बताया है।  
जो जीव उपमानमोह गुणस्थान में च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल में  
पगइट्ठाणाइं या धीगमोह हो जाता है, उसके उक्त मंग का  
काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्य होता है तथा जो अपाध पुद्गल परावर्त  
काल में सम्यग्गृष्टि होकर और उपगमथेजि चढ़कर उपमान  
होता है। उपमान प्रथमसार में रहने का काल अन्तर्मुहूर्त का  
है। उपमान पर चढ़कर धीगमोह हो जाता है, उसके उक्त  
काल अन्तर्मुहूर्त अपाध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्य होता है।

1. 22  
2. 22  
3. 22  
4. 22  
5. 22  
6. 22  
7. 22  
8. 22  
9. 22  
10. 22

नौ प्रकृतिक बंधस्थान के काल की अपेक्षा तीन विकल्प अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें अनादि-अ विकल्प अभव्यों में होता है, क्योंकि अभव्यों के नौ प्रकृतिक स्थान का कभी भी विच्छेद नहीं पाया जाता है । अनादि-सान्त वि भव्यों में होता है, क्योंकि भव्यों के नौ प्रकृतिक बंधस्थान का काल में विच्छेद पाया जाता है तथा सादि-सान्त विकल्प सम्यक् च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के पाया जाता है । सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपाधं पुद्गल परावर्त है । जिसे इस प्रकार समझना कि सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ जो जीव मुहूर्त काल के पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके नौ प्र बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है तथा जो अपाधं पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में सम्यग्दृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्रा जाता है, अनन्तर अपाधं पुद्गल परावर्त काल में अन्तर्मुहूर्त देश पर जो पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके उत्कृष्ट काल अपाधं पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

यह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और काल एक ही वस्तीस मागर है । यह इस प्रकार है कि जो जीव संयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त काल के ज्ञानम वा क्षणक श्रेणि पर चढ़कर अपूर्वकरण के प्रथम भ श्रेणी करके चार प्रकृतिक बंध करने लगता है, उसके यह बंधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त होता है, अथवा जो सम्यग्दृष्टि स्वयंकाल तक उपशम सम्यक्त्व में रहकर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, उसके भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देगा ज उत्कृष्ट काल एक ही वस्तीस मागर इस प्रकार समझना चा



क्षपकश्रेणि में होता है और क्षपकश्रेणि से जीव का प्रतिपात न होता है।

छह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह है। क्योंकि यह स्थान क्षपक अनिवृत्ति के दूसरे भाग से लेव क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और उसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल एक सत्ता है। क्योंकि यह स्थान क्षीणमोह गुणस्थान के अंतिम समय में पा जाता है।

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थान दो हैं—चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक—'उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणंग'। चार प्रकृतिक उदयस्थान गन्धु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण—का उदय क्षीणमोह गुणस्थान तक सदैव पाया जाता है। इसीलिए इन चारों का समुदाय एक उदयस्थान है। इन चार में निद्रा आदि पाँचों में से किसी एक प्रकृति के मिना देने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। निद्रा प्रकृति ध्रुवोदया प्रकृतियाँ नहीं हैं, क्योंकि उदययोग्य काल के होने पर उनका उदय होता है। अतः यह पाँच प्रकृतिक उदयस्थान कदाचित् प्राप्त होता है।

दर्शनावरण के चार और पाँच प्रकृतिक, यह दो ही उदयस्थान होने गया छह, मान आदि प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण है कि निद्राओं में दो या दो से अधिक प्रकृतियों का एक साथ उदय होता है, किन्तु एक काल में एक ही प्रकृति का उदय होता है।

१. यदि निद्राओं में निद्रादिना गुणरुद्धमायान्ति किन्त्येकस्मिन् काले पाँचों का उदय।





शब्दायं—बीयावरणे—दूसरे आवरण—दर्शनावरण में, नव-  
बंधगेतु—नी के बंध के समय, चउपंच—चार या पाँच का, उदय—  
उदय, नवसंता—नी प्रकृतियों की सत्ता, छहचउबंधे—छह और चार  
के बंध में, सेयं—पूर्वोक्त प्रकार से उदय और सत्ता, चउबंधुदए—  
चार के बंध और चार के उदय में, छलंसा—छह की सत्ता, य—  
और, उपरयबंधे—बंध का विच्छेद होने पर, चउपण—चार अथवा  
पाँच का उदय, नवंस—नी की सत्ता, चउरउदय—चार का उदय,  
छ—छह, च—और, चउसंता—चार की सत्ता ।

मायायं—दर्शनावरण की नी प्रकृतियों का बंध होते  
समय चार या पाँच प्रकृतियों का उदय तथा नी प्रकृतियों  
की सत्ता होती है । छह और चार प्रकृतियों का बंध होते  
समय उदय और सत्ता पूर्ववत् होती है । चार प्रकृतियों का  
बंध और उदय रहते सत्ता छह प्रकृतियों की होती है एवं  
बंधविच्छेद हो जाने पर चार या पाँच प्रकृतियों का उदय  
रहते सत्ता नी की होती है । चार प्रकृतियों का उदय रहने  
पर सत्ता छह और चार की होती है ।

विशेषार्थ—माया में दर्शनावरण कर्म के संबन्ध भंगों का विवेचन  
दिया गया है ।

दर्शनावरण की नी उत्तर प्रकृतियों का बंध पहले और दूसरे—  
मिथ्यात्व य मायादन—गुणस्थान में होता है, तब चार या पाँच  
प्रकृतियों का उदय तथा नी प्रकृतियों की सत्ता होती है—‘बीयावरण  
नव बंधगेतु चउ पंच उदय नव संता’ । चार प्रकृतिक उदयस्थान  
अर्थात् दर्शनावरण आदि केवलदर्शनावरण पर्यन्त चार ध्रुवीय प्रकृति  
का प्रत्यक्ष हिमा गया है तथा पाँच प्रकृतिक उदयस्थान उक्त चार  
प्रकृतियों के साथ किसी एक निद्रा की मित्रा देने से प्राप्य होता है  
दर्शनावरण कर्म के नी प्रकृतिक बंध, नी प्रकृतिक सत्ता  
की अन्तर्गत भी भंग प्राप्त होती है—



क्षपक जीव अत्यन्त विशुद्ध होता है, अतः उसके निद्रा और प्रचला प्रकृति का उदय नहीं होता है, जिससे उसमें पहला और तीसरा यह दो भंग प्राप्त होते हैं। पहला भंग—छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवों के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक होता है तथा तीसरा भंग—चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवों के नौवें अनिवृत्तिवादरसंपराय गुणस्थान के संख्यात भागों तक होता है।

क्षपक जीवों के लिये एक और विशेषता समझना चाहिये कि अनिवृत्तिवादर संपराय गुणस्थान में स्थानाद्विचिक का क्षय हो जाने से आगे नौ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं रहता है। अतः अनिवृत्तिवादर-संपराय गुणस्थान के संख्यात भागों से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक और भंग होता है—‘चउबंधुदए छलंसा य’। यह भंग उपर्युक्त चार भागों से पृथक् है।

इस प्रकार दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियों का यथासंभव बंध रहते हुए तिनने भंग संभव हैं, इसका विचार किया। अब उदय और सत्ता की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म के संभव भागों का विचार करते हैं।

‘उमसमये चउपण नवंस’—बंध का विच्छेद हो जाने पर विज्ञान में पाय या पाँव का उदय तथा नौ की सत्ता वाले दो भंग होते हैं। उनके दो भंग इस प्रकार हैं—

१—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

२—पाँव प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

इस दोनों भंगों के बनने का कारण यह है कि उपमान्तमोह गुण के दर्शनावरण की सभी नौ प्रकृतियों की मत्ता पाई जाती है और विज्ञान में पाय या पाँव प्रकृतियों का पाया जाता है।



बंधस्थान और उदयस्थान सर्वत्र एक प्रकृतिक होता है किन्तु सत्ता-स्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दो होते हैं।

वेदनीय कर्म के संवेध भंग इस प्रकार हैं—१. असाता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता, २. असाता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता, ३. साता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता और ४. साता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता।

उक्त चार भंग बंध रहते हुए होते हैं। इनमें से आदि के दो पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में लेकर छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं। क्योंकि प्रमत्तसंयत गुणस्थान में असाता का बंधविच्छेद हो जाने से आगे इसका बंध नहीं होता है। जिससे सातवें अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में आदि के दो भंग प्राप्त नहीं होते हैं। अंत के दो भंग अर्थात् तीसरा और चौथा भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं। क्योंकि साता वेदनीय का बंध तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होता है। बंध का अभाव होने पर उदय व सत्ता की अपेक्षा निम्नलिखित चार भंग होते हैं—

१. असाता का उदय और दोनों की सत्ता।

२. साता का उदय और दोनों की सत्ता।

३. असाता का उदय और असाता की सत्ता।

४. साता का उदय और साता की सत्ता।

इनमें से आदि के दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होते हैं। क्योंकि अयोगिकेवली के द्विचरम समय तक दोनों की सत्ता पाई जाती है। अंत के दो भंग—तीसरा और चौथा—चरम समय में होता है। जिसके द्विचरम समय में साता का क्षय होता है।

तब समय में तीसरा भंग—असाता का उदय, असाता की सत्ता होता है तथा जिसके द्विचरम समय में असाता का क्षय



पाँच, तिर्यचायु के नौ, मनुष्यायु के नौ और देवायु के पाँच संवेध भंग होते हैं। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

एक पर्याय में किसी एक आयु का उदय और उसके उदय में बंधने योग्य किसी एक आयु का ही बंध होता है, दो या दो से अधिक का नहीं। इसलिये बंध और उदय की अपेक्षा आयु का एक प्रकृतिक बंधस्थान और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार दो होते हैं। क्योंकि जिसने परभव की आयु का बंध कर लिया है, उसके दो प्रकृतिक तथा जिसने परभव की आयु का बंध नहीं किया है, उसके एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।<sup>१</sup>

अब आयुकर्म के संवेध भंगों को बतलाते हैं। आयुकर्म की तीन अवस्थाएँ होती हैं—

१. परभव सम्बन्धी आयुकर्म के बंधकाल से पूर्व की अवस्था

२. परभव सम्बन्धी आयु के बंधकाल की अवस्था।

३. परभव सम्बन्धी आयुबंध के उत्तर-काल की अवस्था।<sup>२</sup>

इन तीनों अवस्थाओं को क्रमशः अवन्धकाल, बंधकाल उत्तरकाल कहते हैं। सर्वप्रथम नरकायु के संवेध भंगों का वि करते हैं।

१ आयुनि सामान्येनैक बंधस्थानं चतुर्णामन्यतमत्, परस्परविरुद्धत्वेन तद्विनाशायुना बन्ध्यामावन् । उदयस्थानमप्येकम्, तदपि चतुर्णामन्य मुपाद् विनाशायु उदयानायात् । द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एकं च । भव्युर्गमन्यतया यावदव्ययं परमवायुनं बध्यते, परमवायुनि च परमव्यये परमदे नोपपन्नं तावद् द्वे गनी ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०

२ अत्राव्ययत्वमवस्थाः, तद्यथा—परमवायुबंधकालात् पूर्वावस्थां बन्धकालेन परमव्यये परमवायुर्बन्धीतरतावावस्था च ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०





इस प्रकार नरकगति में आयु के अवन्ध में एक, बंध में दो और उपरतबंध में दो, कुल मिलाकर पाँच भंग होते हैं।

नरकगति की आयुबंध सम्बन्धी विशेषता

नारक जीवों के उक्त पाँच भंग होने के प्रसंग में इतना विशेष जानना चाहिये कि नारक भवस्वभाव से ही नरकायु और देवायु का बंध नहीं करते हैं। क्योंकि नारक मर कर नरक और देव पर्याय में उत्पन्न नहीं होते हैं, ऐसा नियम है।<sup>१</sup> आशय यह है कि तिर्यन् और मनुष्य गति के जीव तो मरकर चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं किन्तु देव और नारक मरकर पुनः देव और नरक गति में उत्पन्न नहीं होते हैं, वे तो केवल तिर्यन् और मनुष्य गति में ही उत्पन्न होते हैं। नरकगति के आयुकर्म के संवेध भंगों का विवरण इस प्रकार है—

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अबंधकाल	०	नरक	नरक	१, २, ३, ४
२	बंधकाल	तिर्यन्	नरक	न० ति०	१, २
३	बंधकाल	मनुष्य	नरक	न० म०	१, २, ४
४	उप० बंधकाल	०	नरक	न० ति०	१, २, ३, ४
५	उप० बंधकाल	०	नरक	न० म०	१, २, ३, ४

देवायु के संवेध भंग—यद्यपि नरकगति के पश्चात् तिर्यन्गति के आयुकर्म के संवेध भंगों का कथन करना चाहिये था। लेकिन इस प्रकार नरकगति में अवन्ध, बंध और उपरतबंध की अपेक्षा तिर्यन् भंग व उनके गुणस्थान बतलाये हैं, उसी प्रकार देवगति में भी

“देव नारका वा देवेभ्यु नारगेभ्यु वि न जययज्जति एति” । ततो नारकायुः कर्मवृत्त्यर्थे भवति न नारकायुः कर्मवृत्त्यर्थे भवति न देवायुः नारकायुर्नारकायुः विद्वान् नारकायुः कर्मवृत्त्यर्थे भवति न नारकायुः कर्मवृत्त्यर्थे भवति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५



प्रारंभ के पाँच गुणस्थानों में पाया जाता है। क्योंकि तिर्यचगति में आदि के पाँच गुणस्थान ही होते हैं, शेष गुणस्थान नहीं होते हैं।

तिर्यचगति में बन्धकाल के समय निम्नलिखित चार भंग होते हैं—१. नरकायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता। २. तिर्यचायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यच तिर्यचायु की सत्ता, ३. मनुष्यायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता तथा—४. देवायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय और देव-तिर्यचायु की सत्ता।

इनमें से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बंध नहीं होता है। दूसरा भंग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में होता है, क्योंकि तिर्यचायु का बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है। तीसरा भंग भी पहले और दूसरे गुणस्थान—मिथ्यात्व और सासादन तक होता है, क्योंकि तिर्यच जीव मनुष्यायु का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में ही करते हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि और देव विमल गुणस्थान में नहीं। चौथा भंग तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्य) गुणस्थान को छोड़कर पाँचवें देशविरत गुणस्थान तक का गुणस्थानों में होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आयुक्रम का बंध न होने से उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है।

इसी प्रकार उपरान्वन्धकाल में भी चार भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—१. तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता, २. तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता, ३. तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता और ४. तिर्यचायु का उदय तथा देव-तिर्यचायु की सत्ता।

ये चारों भंग प्राग्भूत के पाँच गुणस्थानों में होते हैं, क्योंकि तिर्यच नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु का बंध कर



इनमें से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बंध सम्भव नहीं है। तिर्यचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक होता है, अतः दूसरा भंग मिथ्यात्व, सासादन इन दो गुणस्थानों में होता है। तीसरा भंग भी मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में ही पाया जाता है, क्योंकि मनुष्य तिर्यचायु के समान मनुष्यायु का बन्ध भी दूसरे गुणस्थान तक ही करते हैं। चौथा भंग मिश्र गुणस्थान को छोड़कर अप्रमत्तसंयत सातवें गुणस्थान तक छह गुणस्थानों में होता है। क्योंकि मनुष्यगति में देवायु का बंध अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाया जाता है।

उपरतबंधकाल में—१. मनुष्यायु का उदय और नर-मनुष्यायु का सत्त्व, २. मनुष्यायु का उदय और तिर्यच-मनुष्यायु का सत्त्व, ३. मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु का सत्त्व तथा ४. मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु का सत्त्व, यह चार भंग होते हैं।

उक्त चार भंगों में से आदि के तीन भंग सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाये जाते हैं। क्योंकि यद्यपि मनुष्यगति में नरकायु का बंध पहले गुणस्थान में, तिर्यचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक तथा इसी प्रकार मनुष्यायु का बंध भी दूसरे गुणस्थान तक ही होता है तथापि बंध करने के बाद ऐसे जीव संयम को तो धारण कर सकते हैं, किन्तु श्रेणि-आरोहण नहीं करते हैं। इसलिये उपरतबंध के अनेका नरक, तिर्यच और मनुष्य आयु इन तीन आयुओं का सत्त्व अप्रमत्त गुणस्थान तक बतलाया है। चौथा भंग प्रारम्भ के मनुष्य गुणस्थानों तक पाया जाना सम्भव है, क्योंकि देवायु का मनुष्य ने बंध कर लिया है, उसके उपशमश्रेणि पर आरोहण सम्भव है। इस प्रकार मनुष्यगति में अबन्ध, बंध और उपरतबंध की अवस्थाओं के हुए भी भंग होते हैं।



सत्ता पाँचवें गुणस्थान तक, देवायु की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक और मनुष्यायु की सत्ता चौदहवें गुणस्थान तक पाई जाती है। गो० कर्मकांड में भी इसी मत को माना है। अन्य दिगम्बर ग्रन्थों में भी यही एक मत पाया जाता है।

यहाँ जो वर्णन किया गया है वह दूसरे मत—उपरतबंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवें गुणस्थान तक पाई जाती है—के अनुसार किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसी मत के अनुसार सप्ततिका प्रकरण टीका में विवेचन किया है—  
“वन्धे तु व्यवच्छिन्ने मनुष्यायुष उदयो नारक-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्, नारकायुर्वन्धानन्तरं संयमप्रतिपत्तेरपि सम्भवात्। मनुष्यायुष उदयस्तिर्यङ्-मनुष्यायुषी सती, एषोऽपि विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानकं यावत्। मनुष्यायुष उदयो मनुष्य-मनुष्यायुषी सती, एषोऽपि विकल्पः प्राग्वत्। मनुष्यायुष उदयो देव-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्प उपदानमोहगुणस्थानकं यावत्, देवायुषि बद्धेऽनुपशमश्चेत्यारोह सम्भवान्।” —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

द्वेताम्बर कर्म साहित्य में इसी मत की मुख्यता है। मनुष्यगति के तीनों भोगों का विवरण निम्न प्रकार समझना चाहिये—

क्रम क्रम	काल	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	नरकायु	०	मनुष्य	मनुष्य	गर्भी चौदह गुण०
२	तिर्यचायु	नरक	“	नरक, मनुष्य	१
३	“	तिर्यच	“	म० तिर्य०	१, २
४	“	मनुष्य	“	म० म०	१, २
५	“	देव	“	म० दे०	१, २, ४, ५, ६, ७
६	उपरतबंध	“	“	म० न०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
७	“	“	“	म० वि०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
८	“	“	“	म० म०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
९	“	“	“	म० दे०	१ से १३ गुण०





करने पर मिश्र गुणस्थान में नरकादि गतियों में क्रम से ३,५,५,३, भंग होते हैं और चौथे गुणस्थान में देव, नरक गति में तो तिर्यचायु का बंध रूप भंग नहीं होने से चार-चार भंग हैं तथा मनुष्य-तिर्यच-गति में आयु बंध की अपेक्षा नरक, तिर्यच, मनुष्य आयु बंधरूप तीन भंग न होने से छह-छह भंग हैं, क्योंकि इनके बंध का अभाव सासादन गुणस्थान में हो जाता है। देशविरत गुणस्थान में तिर्यच और मनुष्यों के बंध, अवंध और उपरतबंध की अपेक्षा तीन-तीन भंग होते हैं। छठवें, सातवें गुणस्थान में मनुष्य के ही और देवायु के बंध की ही अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग होते हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थानों में सब मिलाकर अपुनरुक्त भङ्ग क्रम से २८, २६, १६, २०, ६, ३, ३ हैं।<sup>१</sup>

वेदनीय और आयु कर्म के संवेध भङ्गों का विचार करने के अनन्तर अब गोत्रकर्म के भङ्गों का विचार करते हैं।

### गोत्रकर्म के संवेध भंग

गोत्र कर्म के दो भेद हैं—उच्चगोत्र, नीचगोत्र। इनमें से एक गोत्र के एककाल में किसी एक का बंध और किसी एक का उदय होना है। क्योंकि दोनों का बंध या उदय परस्पर विरुद्ध है। जब उच्च गोत्र का बंध होना है तब नीच गोत्र का बंध नहीं और नीच गोत्र के बंध के समय उच्च गोत्र का बंध नहीं होता है।

१. इस गोत्र के प्रतिरिक्ता गो० कर्मांड में उपसमर्थेणि और क्षपकर्थेणि की अपेक्षा मनुष्यगति में आयुकर्म के कुछ और भंग बतलाये हैं कि उपसमर्थेणि में देवायु का भी बंध न होने से देवायु के अवन्ध, उपरत-बंध की अपेक्षा दो-दो भंग हैं तथा क्षपकर्थेणि में उपरतबंध के भी न होने से क्षपक की अपेक्षा एक-एक ही भंग है। अतः उपसमर्थेणि की अपेक्षा क्षपकर्थेणि में दो-दो भंग और उभयों बाद क्षपकर्थेणि में अपूर्ववर्तन के कारण देवगोत्रगुणस्थान दस एक-एक भंग कहा गया है।

1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100  
101  
102  
103  
104  
105  
106  
107  
108  
109  
110  
111  
112  
113  
114  
115  
116  
117  
118  
119  
120  
121  
122  
123  
124  
125  
126  
127  
128  
129  
130  
131  
132  
133  
134  
135  
136  
137  
138  
139  
140  
141  
142  
143  
144  
145  
146  
147  
148  
149  
150  
151  
152  
153  
154  
155  
156  
157  
158  
159  
160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
1000  
1001  
1002  
1003  
1004  
1005  
1006  
1007  
1008  
1009  
1010  
1011  
1012  
1013  
1014  
1015  
1016  
1017  
1018  
1019  
1020  
1021  
1022  
1023  
1024  
1025  
1026  
1027  
1028  
1029  
1030  
1031  
1032  
1033  
1034  
1035  
1036  
1037  
1038  
1039  
1040  
1041  
1042  
1043  
1044  
1045  
1046  
1047  
1048  
1049  
1050  
1051  
1052  
1053  
1054  
1055  
1056  
1057  
1058  
1059  
1060  
1061  
1062  
1063  
1064  
1065  
1066  
1067  
1068  
1069  
1070  
1071  
1072  
1073  
1074  
1075  
1076  
1077  
1078  
1079  
1080  
1081  
1082  
1083  
1084  
1085  
1086  
1087  
1088  
1089  
1090  
1091  
1092  
1093  
1094  
1095  
1096  
1097  
1098  
1099  
1100  
1101  
1102  
1103  
1104  
1105  
1106  
1107  
1108  
1109  
1110  
1111  
1112  
1113  
1114  
1115  
1116  
1117  
1118  
1119  
1120  
1121  
1122  
1123  
1124  
1125  
1126  
1127  
1128  
1129  
1130  
1131  
1132  
1133  
1134  
1135  
1136  
1137  
1138  
1139  
1140  
1141  
1142  
1143  
1144  
1145  
1146  
1147  
1148  
1149  
1150  
1151  
1152  
1153  
1154  
1155  
1156  
1157  
1158  
1159  
1160  
1161  
1162  
1163  
1164  
1165  
1166  
1167  
1168  
1169  
1170  
1171  
1172  
1173  
1174  
1175  
1176  
1177  
1178  
1179  
1180  
1181  
1182  
1183  
1184  
1185  
1186  
1187  
1188  
1189  
1190  
1191  
1192  
1193  
1194  
1195  
1196  
1197  
1198  
1199  
1200  
1201  
1202  
1203  
1204  
1205  
1206  
1207  
1208  
1209  
1210  
1211  
1212  
1213  
1214  
1215  
1216  
1217  
1218  
1219  
1220  
1221  
1222  
1223  
1224  
1225  
1226  
1227  
1228  
1229  
1230  
1231  
1232  
1233  
1234  
1235  
1236  
1237  
1238  
1239  
1240  
1241  
1242  
1243  
1244  
1245  
1246  
1247  
1248  
1249  
1250  
1251  
1252  
1253  
1254  
1255  
1256  
1257  
1258  
1259  
1260  
1261  
1262  
1263  
1264  
1265  
1266  
1267  
1268  
1269  
1270  
1271  
1272  
1273  
1274  
1275  
1276  
1277  
1278  
1279  
1280  
1281  
1282  
1283  
1284  
1285  
1286  
1287  
1288  
1289  
1290  
1291  
1292  
1293  
1294  
1295  
1296  
1297  
1298  
1299  
1300  
1301  
1302  
1303  
1304  
1305  
1306  
1307  
1308  
1309  
1310  
1311  
1312  
1313  
1314  
1315  
1316  
1317  
1318  
1319  
1320  
1321  
1322  
1323  
1324  
1325  
1326  
1327  
1328  
1329  
1330  
1331  
1332  
1333  
1334  
1335  
1336  
1337  
1338  
1339  
1340  
1341  
1342  
1343  
1344  
1345  
1346  
1347  
1348  
1349  
1350  
1351  
1352  
1353  
1354  
1355  
1356  
1357  
1358  
1359  
1360  
1361  
1362  
1363  
1364  
1365  
1366  
1367  
1368  
1369  
1370  
1371  
1372  
1373  
1374  
1375  
1376  
1377  
1378  
1379  
1380  
1381  
1382  
1383  
1384  
1385  
1386  
1387  
1388  
1389  
1390  
1391  
1392  
1393  
1394  
1395  
1396  
1397  
1398  
1399  
1400  
1401  
1402  
1403  
1404  
1405  
1406  
1407  
1408  
1409  
1410  
1411  
1412  
1413  
1414  
1415  
1416  
1417  
1418  
1419  
1420  
1421  
1422  
1423  
1424  
1425  
1426  
1427  
1428  
1429  
1430  
1431  
1432  
1433  
1434  
1435  
1436  
1437  
1438  
1439  
1440  
1441  
1442  
1443  
1444  
1445  
1446  
1447  
1448  
1449  
1450  
1451  
1452  
1453  
1454  
1455  
1456  
1457  
1458  
1459  
1460  
1461  
1462  
1463  
1464  
1465  
1466  
1467  
1468  
1469  
1470  
1471  
1472  
1473  
1474  
1475  
1476  
1477  
1478  
1479  
1480  
1481  
1482  
1483  
1484  
1485  
1486  
1487  
1488  
1489  
1490  
1491  
1492  
1493  
1494  
1495  
1496  
1497  
1498  
1499  
1500  
1501  
1502  
1503  
1504  
1505  
1506  
1507  
1508  
1509  
1510  
1511  
1512  
1513  
1514  
1515  
1516  
1517  
1518  
1519  
1520  
1521  
1522  
1523  
1524  
1525  
1526  
1527  
1528  
1529  
1530  
1531  
1532  
1533  
1534  
1535  
1536  
1537  
1538  
1539  
1540  
1541  
1542  
1543  
1544  
1545  
1546  
1547  
1548  
1549  
1550  
1551  
1552  
1553  
1554  
1555  
1556  
1557  
1558  
1559  
1560  
1561  
1562  
1563  
1564  
1565  
1566  
1567  
1568  
1569  
1570  
1571  
1572  
1573  
1574  
1575  
1576  
1577  
1578  
1579  
1580  
1581  
1582  
1583  
1584  
1585  
1586  
1587  
1588  
1589  
1590  
1591  
1592  
1593  
1594  
1595  
1596  
1597  
1598  
1599  
1600  
1601  
1602  
1603  
1604  
1605  
1606  
1607  
1608  
1609  
1610  
1611  
1612  
1613  
1614  
1615  
1616  
1617  
1618  
1619  
1620  
1621  
1622  
1623  
1624  
1625  
1626  
1627  
1628  
1629  
1630  
1631  
1632  
1633  
1634  
1635  
1636  
1637  
1638  
1639  
1640  
1641  
1642  
1643  
1644  
1645  
1646  
1647  
1648  
1649  
1650  
1651  
1652  
1653  
1654  
1655  
1656  
1657  
1658  
1659  
1660  
1661  
1662  
1663  
1664  
1665  
1666  
1667  
1668  
1669  
1670  
1671  
1672  
1673  
1674  
1675  
1676  
1677  
1678  
1679  
1680  
1681  
1682  
1683  
1684  
1685  
1686  
1687  
1688  
1689  
1690  
1691  
1692  
1693  
1694  
1695  
1696  
1697  
1698  
1699  
1700  
1701  
1702  
1703  
1704  
1705  
1706  
1707  
1708  
1709  
1710  
1711  
1712  
1713  
1714  
1715  
1716  
1717  
1718  
1719  
1720  
1721  
1722  
1723  
1724  
1725  
1726  
1727  
1728  
1729  
1730  
1731  
1732  
1733  
1734  
1735  
1736  
1737  
1738  
1739  
1740  
1741  
1742  
1743  
1744  
1745  
1746  
1747  
1748  
1749  
1750  
1751  
1752  
1753  
1754  
1755  
1756  
1757  
1758  
1759  
1760  
1761  
1762  
1763  
1764  
1765  
1766  
1767  
1768  
1769  
1770  
1771  
1772  
1773  
1774  
1775  
1776  
1777  
1778  
1779  
1780  
1781  
1782  
1783  
1784  
1785  
1786  
1787  
1788  
1789  
1790  
1791  
1792  
1793  
1794  
1795  
1796  
1797  
1798  
1799  
1800  
1801  
1802  
1803  
1804  
1805  
1806  
1807  
1808  
1809  
1810  
1811  
1812  
1813  
1814  
1815  
1816  
1817  
1818  
1819  
1820  
1821  
1822  
1823  
1824  
1825  
1826  
1827  
1828  
1829  
1830  
1831  
1832  
1833  
1834  
1835  
1836  
1837  
1838  
1839  
1840  
1841  
1842  
1843  
1844  
1845  
1846  
1847  
1848  
1849  
1850  
1851  
1852  
1853  
1854  
1855  
1856  
1857  
1858  
1859  
1860  
1861  
1862  
1863  
1864  
1865  
1866  
1867  
1868  
1869  
1870  
1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900  
1901  
1902  
1903  
1904  
1905  
1906  
1907  
1908  
1909  
1910  
1911  
1912  
1913  
1914  
1915  
1916  
1917  
1918  
1919  
1920  
1921  
1922  
1923  
1924  
1925  
1926  
1927  
1928  
1929  
1930  
1931  
1932  
1933  
1934  
1935  
1936  
1937  
1938  
1939  
1940  
1941  
1942  
1943  
1944  
1945  
1946  
1947  
1948  
1949  
1950  
1951  
1952  
1953  
1954  
1955  
1956  
1957  
1958  
1959  
1960  
1961  
1962  
1963  
1964  
1965  
1966  
1967  
1968  
1969  
1970  
1971  
1972  
1973  
1974  
1975  
1976  
1977  
1978  
1979  
1980  
1981  
1982  
1983  
1984  
1985  
1986  
1987  
1988  
1989  
1990  
1991  
1992  
1993  
1994  
1995  
1996  
1997  
1998  
1999  
2000  
2001  
2002  
2003  
2004  
2005  
2006  
2007  
2008  
2009  
2010  
2011  
2012  
2013  
2014  
2015  
2016  
2017  
2018  
2019  
2020  
2021  
2022  
2023  
2024  
2025  
2026  
2027  
2028  
2029  
2030  
2031  
2032  
2033  
2034  
2035  
2036  
2037  
2038  
2039  
2040  
2041  
2042  
2043  
2044  
2045  
2046  
2047  
2048  
2049  
2050  
2051  
2052  
2053  
2054  
2055  
2056  
2057  
2058  
2059  
2060  
2061  
2062  
2063  
2064  
2065  
2066  
2067  
2068  
2069  
2070  
2071  
2072  
2073  
2074  
2075  
2076  
2077  
2078  
2079  
2080  
2081  
2082  
2083  
2084  
2085  
2086  
2087  
2088  
2089  
2090  
2091  
2092  
2093  
2094  
2095  
2096  
2097  
2098  
2099  
2100  
2101  
2102  
2103  
2104  
2105  
2106  
2107  
2108  
2109  
2110  
2111  
2112  
2113  
2114  
2115  
2116  
2117  
2118  
2119  
2120  
2121  
2122  
2123  
2124  
2125  
2126  
2127  
2128  
2129  
2130  
2131  
2132  
2133  
2134  
2135  
2136  
2137  
2138  
2139  
2140  
2141  
2142  
2143  
2144  
2145  
2146  
2147  
2148  
2149  
2150  
2151  
2152  
2153  
2154  
2155  
2156  
2157  
2158  
2159  
2160  
2161  
2162  
2163  
2164  
2165  
2166  
2167  
2168  
2169  
2170  
2171  
2172  
2173  
2174  
2175  
2176  
2177  
2178  
2179  
2180  
2181  
2182  
2183  
2184  
2185  
2186  
2187  
2188  
2189  
2190  
2191  
2192  
2193  
2194  
2195  
2196  
2197  
2198  
2199  
2200  
2201  
2202  
2203  
2204  
2205  
2206  
2207  
2208  
2209  
2210  
2211  
2212  
2213  
221

गोत्रकर्म के सामान्य से भंग बतलाने के पश्चात् अब इन स्थानों के संवेध भङ्ग बतलाते हैं। गोत्रकर्म के सात संवेध भङ्ग इस प्रकार हैं—

१. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीचगोत्र की सत्ता।
२. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीच-उच्च गोत्र की सत्ता।
३. नीचगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
४. उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
५. उच्च गोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
६. उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
७. उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता।

उनमें से पहला भङ्ग उच्चगोत्र की उद्बलना करने वाले अग्नि-कारिण और वायुकायिक जीवों के होता है तथा ऐसे जीव एकेन्द्रिय, विकल्पधर और पंचेन्द्रिय निर्यचों में उत्पन्न होते हैं तो उनके भी अन्तर्मूर्त काय तक के लिये होता है। क्योंकि अन्तर्मूर्त काल के पश्चात् उन एकेन्द्रिय आदि जीवों के उच्चगोत्र का बंध नियम से हो जाता है। दूसरा और तीसरा भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो लक्षणों में पाया जाता है, क्योंकि नीचगोत्र का बंधविच्छेद

पश्चात्, पश्चात्—दो एकम् । तत्र उच्चगोत्र-नीचगोत्रे मनुष्ये  
निर्यचोऽपि वायुकायिकसंस्थाने उच्चगोत्रे उद्बलिते एकम्, अथवा  
निर्यचोऽपि वायुकायिकसंस्थाने नीचगोत्रे उद्बलिते एकम् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५१



गुणस्थानों की अपेक्षा गोत्रकर्म के भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में क्रम से पाँच और चार होते हैं। मिश्र आदि तीन गुणस्थानों में दो-दो भङ्ग हैं। प्रमत्त आदि आठ गुणस्थानों में गोत्र-कर्म का एक-एक भङ्ग है और अयोगिकेवली गुणस्थान में दो भङ्ग होते हैं।<sup>१</sup>

इस प्रकार से वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों को बतलाने के पश्चात् अब पूर्व सूचनानुसार—मोहं परं वोच्छं—मोहनीय कर्म के बंधस्थानों आदि का कथन करते हैं।

मोहनीय कर्म

बावीस एकवीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच ।

चउ तिग दुगं च एवकं बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥१०॥<sup>२</sup>

शब्दार्थ—बावीस—वाईस, एकवीसा—इक्कीस, सत्तरसा—सत्तर, तेरसेव—तेरह, नव—नौ, पंच—पाँच, चउ—चार, तिग—

१ (क) बंधट्ट ऊडण्णयं चि य इयरं वा दो वि संत चऊ मंगा ।

नीएगु तिसु वि पढमो अवंधगे दोणि उच्चुदए ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० १६

(ग) मिच्छादि गोदमंगा पण चटु तिसु दोणि अट्टठाणेमु ।

एवेवस जोगिजिणे दो मंगा होंति नियमेण ॥

—गो० कर्मकांड, गा० १३

२ नुत्ता कीजिये—

(क) बावीसमेकवीसं सत्तरस तेरसेव नव पंच ।

चउतिगदुगं च एवकं बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥

—गो० कर्मकांड ४६

(ग) दुग्गहरीसा सत्तर तेरस नव पंच चउर ति दु एगो ।

वोहो एहि दुग मज्जयव पणउपचमेमु मोहस्स ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० १६

4/24/14 to 4/25/14

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

4/24

मोहनीय कर्म के दस बंधस्थानों में से पहला स्थान बाईस प्रकृतिव है। इसका कारण यह है कि तीन वेदों का एक साथ बंध नहीं होता है, किन्तु एक काल में एक ही वेद का बंध होता है। चाहे वह पुरुष-वेद का हो, स्त्रीवेद का हो या नपुंसकवेद का हो तथा हास्य-रति युगल और अरति-शोक युगल, इन दोनों युगलों में से एक समय में एक युगल का बंध होगा। दोनों युगल एक साथ बंध को प्राप्त नहीं होते हैं। अतः छत्तीस प्रकृतियों में से दो वेद और दो युगलों में से किसी एक युगल के कम करने पर बाईस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। इन बाईस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।

उक्त बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में से मिथ्यात्व को कम कर देने पर इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यह स्थान सासादन गुणस्थान में होता है। क्योंकि मिथ्यात्व का विच्छेद पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में हो जाता है। यद्यपि दूसरे सासादन गुणस्थान में नपुंसक-वेद का भी बंध नहीं होता है, लेकिन पुरुषवेद या स्त्रीवेद के बंध से उसकी पूर्ति हो जाने से संख्या इक्कीस ही रहती है।

अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। अतः इक्कीस प्रकृतियों में से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम कर देने से मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि—तीसरे, चौथे—गुणस्थान में मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है। यद्यपि इन गुणस्थानों में स्त्रीवेद का बंध नहीं होता है, तथापि पुरुषवेद का वहाँ बंध होने से मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान बन जाता है।

देवविमति गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान होता है। क्योंकि अग्रत्याग्यानावरण कषाय चतुष्क का बन्ध चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक ही होता है। अतः मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान में से अग्रत्याग्यानावरण चतुष्क को कम कर देने पर पाँचवें देवविमति गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है।







1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

शब्दार्थ—एकक—एक, व—और, दो—दो, व—और, चउरो—चार, एत्तो—इससे आगे, एक्काहिया—एक-एक प्रकृति अधिक, दस—दस तक, उक्कोसा—उत्कृष्ट से, ओहेण—सामान्य से, मोहणिज्जे—मोहनीय कर्म में, उदयट्ठाणा—उदयस्थान, नव—नौ, हवन्ति—होते हैं।

गाथार्य—एक, दो और चार और चार से आगे एक-एक प्रकृति अधिक उत्कृष्ट दस प्रकृति तक के नौ उदयस्थान मोहनीय कर्म के सामान्य से होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों की संख्या बतलाई है कि वे नौ होते हैं। इन उदयस्थानों की संख्या एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक है।

ये उदयस्थान पश्चादानुपूर्वी के क्रम से बतलाये हैं। गणनानुपूर्वी के तीन प्रकार हैं—१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चादानुपूर्वी और ३. यत्रतत्रानुपूर्वी।<sup>१</sup> इनकी व्याख्या इस प्रकार है कि जो पदार्थ जिस क्रम उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सूत्रकार के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना पूर्वानुपूर्वी है। विलोमक्रम अर्थात् अन्त से लेकर आदि तक गणना करना पश्चादानुपूर्वी है और अपनी इच्छानुसार जहाँ कहीं से अपने इच्छित पदार्थ को प्रथमानकर गणना करना यत्रतत्रानुपूर्वी कहलाता है। यहां ग्रन्थकार इन तीन गणना की आनुपूर्वियों में से पश्चादानुपूर्वी के क्रम से मोहनीय कर्म के उदयस्थान गिनाये हैं।

मोहनीय कर्म का उदय दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक होता है। अतः पश्चादानुपूर्वी गणना क्रम से एक प्रकृतिक उदयस्थान सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में होता है क्योंकि वहाँ संज्वलन लोभ का उदय होता है। अतः इस प्रकार गणना चाहिये कि नौवें गुणस्थान के अगमन पर

इति विविधा पण्यता सं जहा—पुद्गलानुपूर्वी, पञ्चाणुपूर्वी इति।

—अनुयोगद्वारं सूत्र १३



उदयस्थान में मिथ्यात्व को मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।<sup>१</sup>

मोहनीय कर्म के उक्त नौ उदयस्थान सामान्य से बतलाये हैं। क्योंकि तीसरे मिश्र गुणस्थान में मिश्र मोहनीय का और चौथे से सातवें गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो जाता है। इसलिये सभी विकल्पों को न बतलाकर यहाँ तो सूचना मात्र की है। विशेष विस्तार से वर्णन आगे किया जा रहा है। प्रत्येक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उदयस्थानों का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
१ प्र०	नीवें का अवेद भाग व दसवां	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
२ "	नीवें का गवेद भाग	"	"
४ "	६, ७, ८	"	"
५ "	६, ७, ८	"	"
६ "	६, ७, ८	"	"
७ "	पाँचवां	"	"
८ "	४, ३	"	"
९ "	२	"	"
१० "	१	"	"

मोहनीय कर्म के नौ उदयस्थानों की संवत्स्रीय गायत्री इस प्रकार है—

सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः ।  
सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः ॥



विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओं में मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के सत् स्थानों में प्रकृतियों की संख्या बतलाई है कि अमुक सत्तास्थान इतनी प्रकृतियों का होता है। सत्तास्थानों के भेदों का संकेत करने के बाद बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेध भंगों की अनेकता सूचना दी है। जिनका वर्णन आगे यथाप्रसंग किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म के कितने सत्तास्थान होते हैं, इसका संकेत कर हुए ग्रंथकार ने बताया है कि 'संतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहं हुंति पत्तरस्स'—मोहनीय कर्म प्रकृतियों के सत्तास्थान पन्द्रह होते हैं। ये पन्द्रह सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृतियों के हैं, उनका स्पष्ट करण क्रमशः इस प्रकार है—अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बारह, द्वादसी, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, और एक प्रकृतिक।<sup>१</sup> कुल मिलाकर ये पन्द्रह सत्तास्थान<sup>२</sup> होते हैं।

१ (क) अट्ठमसत्तमच्छत्तमगवउत्तिगदुगएककगाहिया बीसा।

तेरम बारिकसारम संने पंचाइ जा एकं ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० १

(ग) अट्ठमनयद्धाक्य चट्ठमदुगेगाधिगाणि बीसाणि।

तेरम बारियारं पणादि एगूणयं सत्तं ॥

—गो० कर्मकांड गा० ४०

२ इन पन्द्रह सत्तास्थानों में से प्रत्येक स्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियों का यह गाथायें इस प्रकार हैं—

उय मोहमाय मोहन कसाय दंसणनिगं नि अडवीसा।

सम्मनूयणणेण मिच्छे मीमे य सगवीसा ॥

दुव्वीसा पुण दुपिआ मीमुच्चलणे अणाइ मिच्छते।

सम्महिदुव्वीसा अणकणए होइ चडवीसा ॥

मिच्छे मीमे सम्मे मीमे नि-दुवीम एउवीसा य।

अट्ठमए तेरम ननुवाए होइ बारममं ॥

मीमे मीमे मीमे मीमे पंचवड पुनिमवीणे।

वीड ममे मीमे मीमे मीमे य कमनी ३ ॥

मिच्छे उय पुण अणा मोह पत्तरम संवडाणाणि।

—पन्द्रह कर्मग्रन्थ आहुत टिप्पण, गा० २८-१

100



### अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना : जयधवला

अट्टार्डिस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने से जब चौबीस प्रकृतिक सत्ता वाला होता है, तब प्राप्त होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कपाय चतुष्क की विसंयोजना करने में श्वेताम्बर और दिग्गम्बर आचार्य एकमत हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त जयधवला टीका में एक मत का उल्लेख और किया गया है। वहाँ बताया गया है कि उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करते हैं, इस विषय में दो मत हैं। एक मत का यह मानना है कि उपशम सम्यक्त्व का काल थोड़ा है और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना का काल बड़ा है, अतः उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना नहीं करता है तथा दूसरा मत है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क के विसंयोजना काल से उपशम सम्यक्त्व का काल बड़ा है इसलिए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करता है। जिन उच्चारणा वृत्तियों के आधार से जयधवला टीका लिखी गई है, उनमें इस दूसरे मत को प्रधानता दी है।

### अट्टार्डिस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल, मतभिन्नता

पंचमसंग्रह के सप्ततिका-संग्रह की गाथा ४१ व उसकी टीका में अट्टार्डिस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असंख्यात भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। लेकिन दिग्गम्बर मतानुसार उसका उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असंख्यातों का अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। इस मतभेद का स्पष्टीकरण यह है—

श्वेताम्बर मतानुसार में बताया है कि छद्मचौबीस प्रकृतिक सत्ता का अन्तर्मुहूर्त ही नियन्त्रण का उद्गम करने उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। अतः उपशम सम्यक्त्व की उद्भवना के अन्तिम काल में चौबीस



स्थान प्राप्त किया और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल के मिथ्यात्व का क्षय कर देता है तो उसके चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है तथा अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करने के बाद जो वेदक सम्यग्दृष्टि ६६ सागर तक वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त के लिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और इसके बाद पुनः ६६ सागर काल तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग एक सौ बत्तीस सागर होता है। इसीलिये चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल एक सौ बत्तीस सागर बताया है।

चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान में से मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और यह स्थान चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस स्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान में से सम्यग्मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर बारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि सम्यक्त्व की क्षपणा में इतना व लगता है।

बारह प्रकृतिक सत्तास्थान में से सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति क्षय हो जाने पर दसवीं प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि सम्यक्त्व की क्षपणा में इतना व लगता है।



दो समय कम दो आवली प्रमाण है। क्योंकि छह नोकपायों के क्षय होने पर पुरुषवेद का दो समय कम दो आवली काल तक सत्त्व देखा जाता है। इसके बाद पुरुषवेद का क्षय हो जाने से चार प्रकृतिक चार प्रकृतिक में से संज्वलन क्रोध का क्षय होने पर तीन प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक में से संज्वलन मान का क्षय हो जाने पर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ये नौवें गुणस्थान में प्राप्त होते। इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

दो प्रकृतिक सत्तास्थान में से संज्वलन माया का क्षय होने एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह नौवें और दसवें गुणस्थान प्राप्त होता है तथा इसका काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थान का क्रम आचार्य मलयगिरि ने संक्षेप में बतलाया है। उपयोगी होने उक्त अंश यहाँ अविकल रूप में प्रस्तुत करते हैं—

‘तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे उत्पत्तिः सप्तविंशतिः । ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वेऽद्वलिते षड्विंशतिः, अनाविहिते दृष्टेर्षा षड्विंशतिः । अष्टाविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुबन्धितचतुर्विंशतिः । ततोऽपि मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिः । ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे क्षपिते एकाविंशतिः । ततोऽष्टस्वप्नप्रत्यासन्नप्रत्याख्यानापरणसंज्ञेषु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदशः । ततो नपुंसक वेदे द्वौ दशः । ततोऽपि स्त्रीवेदे क्षपिते एकादशः । ततः षट्सु नोकषायेषु षट् पञ्च । ततोऽपि पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः । ततोऽपि संज्वलनप्रोद्ये क्षपिते तिस्रः । ततोऽपि संज्वलनमाने क्षपिते द्वे । ततोऽपि संज्वलन मायायां क्षपितायां प्रकृतिः शनोति ।’

सत्तास्थानों के स्वामी और काल सम्बन्धी दिगम्बर साहित्य का मत

स्वामी और काल सम्बन्धी मत के समान ही दिगम्बर कर्मणः

१. कर्मणः प्रकरण दी. १, पृ. १५३



इसका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व की उद्वलना में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो त्रिकरण क्रिया का प्रारम्भ कर देता है, और उद्वलना होने के बाद एक समय का अन्तराल देकर जो उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है, उसके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है।

कर्मग्रन्थ में चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर बताया है, जबकि कपायप्राभृत की चूर्णि में उक्त स्थान का उत्कृष्ट काल साधक एक सौ बत्तीस सागर बताया है—

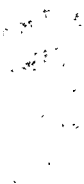
‘चउबीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उवकस्सेण पं छावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।’

इसका स्पष्टीकरण जयध्वला टीका में किया गया है कि उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की। अनन्तर छियासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षण की। उस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना हो चुकने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षण होने तक के काल का योग साधक एक सौ बत्तीस सागर होता है।

इसी प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधक तीसरे सागर दोनों परम्पराओं में समान रूप से माना है। कपायप्राभृत चूर्णि में लिखा है—

‘एउउबीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उवकस्सेण पं छावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।’

उक्त उत्कृष्ट काल का जयध्वला में स्पष्टीकरण करते हुए है कि कोई अनन्तदृष्टि देखा या नारक मर कर एक पूर्वज पुनर्जन्म से उत्पन्न हुआ। अनन्त आठ वर्ष के बाद





मोहनीय कर्म के पन्द्रह सत्तास्थानों का गुणस्थान, काल सहित विवरण इस प्रकार है—

सत्ता स्थान	गुणस्थान	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
२८	१ से ११	अन्तर्मुहूर्त	साधिक १३२ सागर
२७	पहला व तीसरा	पत्य का असं० भाग	पत्य का असंख्यातवां भाग
२६	१	अन्तर्मुहूर्त	देशीय अपार्ध पुद्० परावर्त
२४	३ से ११	अन्तर्मुहूर्त	१३२ सागर
२३	४ से ७	"	अन्तर्मुहूर्त
२२	४ से ७	"	"
२१	४ से ११	"	साधिक ३३ सागर
१३	६ वां	"	अन्तर्मुहूर्त
१२	"	"	"
११	"	"	"
१०	"	दो समय कम दो आवली	दो समय कम दो आवली
९	"	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
८	"	"	"
७	"	"	"
६	"	"	"
५	मौरी व	"	"
४	मौरी व	"	"



साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता; चौथा भंग—साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो विकल्प पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक पाये जाते हैं। इसके बाद बंध का अभाव हो जाने से पाँचवां भंग—असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा छठा भंग—साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, यह दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थान में द्विचरम समय तक प्राप्त होते हैं और चरम समय में सातवां भंग—असाता का उदय और असाता की सत्ता तथा आठवां भंग—साता का उदय और साता की सत्ता, यह दो भंग पाये जाते हैं।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली द्रव्यमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहे जाते हैं, अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में वेदनीय कर्म के आठ भंग मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

इस प्रकार ये वेदनीय कर्म के भंगों का कथन करके अब गोय कर्म के भंगों को बतलाते हैं कि 'सत्तग तिगं च गोए'—ये इस प्रकार हैं—

गोयकर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में सात भंग प्राप्त होते हैं। वे सात भंग इस प्रकार हैं—१. नीच का बंध, नीच का उदय और नीच की सत्ता, २. नीच का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ३. नीच का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ४. उच्च का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ५. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, ६. उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता तथा ७. उच्च का उदय और उच्च की सत्ता।

उक्त सात भंगों में से पहला भंग उन संज्ञियों को होता है जो



पञ्जत्तापञ्जत्तग समणे पञ्जत्त अमण सेसेसु ।

अट्ठावीसं दसगं नवगं पणगं च आउस्स ॥

अर्थात्—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और शेष ग्यारह जीवस्थानों में आयु कर्म के क्रमशः २८, १०, ६ और ५ भंग होते हैं ।

आशय यह है कि पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयुकर्म के २८ भंग होते हैं । अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में १० तथा पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में ६ भंग होते हैं । इन तीन जीवस्थानों से शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों में से प्रत्येक में पांच-पांच भंग होते हैं ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयुकर्म के अट्ठाईस भंग इस प्रकार समझना चाहिये कि पहले नारकों के ५, तिर्यकों के ६, मनुष्यों के ६ और देवों के ५ भंग बतला आये हैं, जो कुल मिलाकर २८ भंग होते हैं, वे ही यहां पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के २८ भंग कहे गये हैं । विशेष विवेचन इस प्रकार है—

नारक जीव के १. परभव की आयु के बंधकाल के पूर्व नरकायु का उदय, नरकायु की सत्ता, २. परभव की आयु बंध होने के समय तिर्यन्त्रायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-तिर्यन्त्रायु की सत्ता अथवा ३. मनुष्यायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, ४. परभव की आयुबंध के उत्तरकाल में नरकायु का उदय और नरक-तिर्यन्त्रायु की सत्ता अथवा ५. नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, यह पांच भंग होते हैं । नारक जीव भवप्रत्यय से ही देव और नरकायु बंध नहीं करते हैं अतः परभव की आयु बंधकाल में और त्रयोदश काल में देव और नरकायु का विकल्प सम्भव नहीं होने से आयु कर्म के पांच विकल्प ही होते हैं ।



में अपर्याप्त नाम कर्म का उदय नहीं होता है तथा इनके परभव संबंधी मनुष्यायु तथा तिर्यचायु का ही बन्ध होता है, अतः इनके मनुष्यगति की अपेक्षा ५ और तिर्यचगति की अपेक्षा ५ भंग, इस प्रकार कुल दस भंग होते हैं। जैसे कि तिर्यचगति की अपेक्षा १. आयुबंध के पहले तिर्यचायु का उदय और तिर्यचायु की सत्ता २. आयुबंध के समय तिर्यचायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३. मनुष्यायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता, ४. बंध की उपरति होने पर तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ५. तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता। कुल मिलाकर ये पाँच भंग हुए।

इसी प्रकार मनुष्यगति की अपेक्षा भी पाँच भंग समझना चाहिये, लेकिन तिर्यचायु के स्थान पर मनुष्यायु को रखें। जैसे कि आयु बंध के पहले मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता आदि।

पर्याप्त अमंजी पंचेन्द्रिय जीव तिर्यच ही होता है और उसके चारों आयुओं का बंध सम्भव है, अतः यहाँ आयु के वे ही नौ भंग होते हैं जो सामान्य तिर्यचों के बतलाये हैं।

इस प्रकार से तीन जीवस्थानों में आयुकर्म के भंगों को बतलाने के बाद शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों के भंगों के बारे में कहते हैं कि उनमें से प्रत्येक में पाँच-पाँच भंग होते हैं। क्योंकि शेष ग्यारह जीवस्थानों के जीव तिर्यच दो होते हैं और उनके देवायु व नरकायु का बंध नहीं होता है, अतः मंजी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यचों के जो पाँच भंग बताये हैं, वे ही यहाँ जानना चाहिये कि बंधकाल से पूर्व का एक भंग, बंधकाल के समय के दो भंग और उपरान्त बंधकाल के दो भंग।



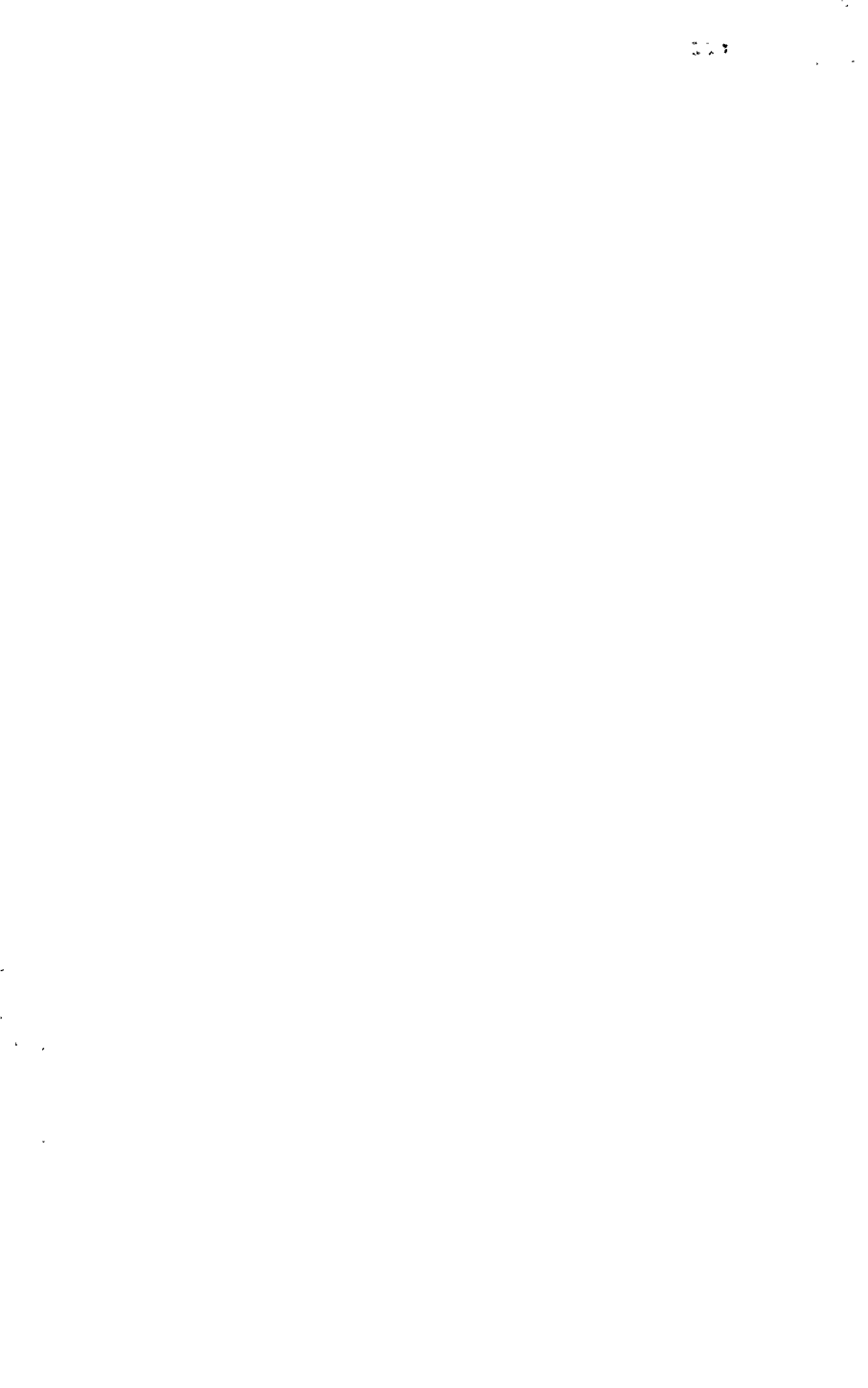


शब्दार्थ—अट्सु—आठ जीवस्थानों में, पंचसु—पाँच जीवस्थानों में, एगे—एक जीवस्थान में, एग—एक, दुगं—दो, दस—दस, य—और, मोहबंधगए—मोहनीय कर्म के बंधगत स्थानों में, तिग चउ नव—तीन चार और नौ, उदयगए—उदयगत स्थान, तिग तिग पन्नरस—तीन, तीन और पन्द्रह, सतंम्मि—सत्ता के स्थान।

गाथार्थ—आठ, पाँच और एक जीवस्थान में मोहनीय कर्म के अनुक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान तथा तीन, तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इस गाथा में मोहनीय कर्म के जीवस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थान बतलाये हैं और जीवस्थानों तथा बंधस्थानों, उदयस्थानों तथा सत्तास्थानों की संख्या का संकेत किया है कि कितने जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के कितने बंधस्थान हैं, कितने उदयस्थान हैं और कितने सत्तास्थान हैं। परन्तु यह नहीं बताया है कि वे कौन-कौन होते हैं। अतः इसका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

आठ, पाँच और एक जीवस्थान में यथाक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान हैं। अर्थात् आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान है, पाँच जीवस्थानों में दो बंधस्थान हैं और एक जीवस्थान में दस बंधस्थान हैं। उनमें से पहले आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान होने को स्पष्ट करते हैं कि पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त गारर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतु-रिन्द्रिय, अपर्याप्त अमंजी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त संजी पंचेन्द्रिय, इन आठ जीवस्थानों में पहला मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अतः इनके एक २२ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। वे २२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मिथ्याज्ञ, अनन्यानुबंधी कपाय चतुष्क आदि सोलह कपाय, तीन जेहसे से में कोई एक तेर, हाग्य-रनि और मोक-अरति गुण में से कोई



तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानुबंधी चतुष्क में से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीव-स्थानों में नहीं पाया जाता है। क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढ़ते ही नहीं हैं, अतः इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं है।

उक्त आठ जीवस्थानों में नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, कपाय चतुष्क और दो युगलों में से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। इस उदयस्थान में आठ भंग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानों में एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नहीं, अतः यहाँ वेद का विकल्प तो संभव नहीं किन्तु यहाँ विकल्प बानी प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कपाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भंग होते हैं।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भंग होते हैं अतः आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भंग होते हैं। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग हैं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अतः पूर्णतः आठ भंग ही होते हैं। इस प्रकार तीनों उदयस्थानों के कुल ३२ भंग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान में अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

प्रयोग चार, एकेन्द्रिय आदि पांच जीवस्थानों में भी प्रयोग में आये हैं—आठ, नौ और दस प्रकृतिक। सो



इस प्रकार से जीवस्थानों में पृथक्-पृथक् उदय और सत्तास्थानों का कथन करने के अनन्तर अब इनके संवेध का कथन करते हैं—आठ जीवस्थानों में एक २२ प्रकृतिक बंधस्थान होता है और उसमें ८ और १० प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान होते हैं तथा प्रत्येक उदयस्थान में २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्तास्थान हैं। इस प्रकार आठ जीवस्थानों में से प्रत्येक के कुल नौ भंग हुए। पाँच जीवस्थानों में २२ प्रकृतिक और २१ प्रकृतिक, ये दो बंधस्थान हैं और इनमें से २२ प्रकृतिक बंधस्थान में ८, ९ और १० प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं और प्रत्येक उदयस्थान में २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। इस प्रकार कुल नौ भंग हुए। २१ प्रकृतिक बंधस्थान में ७, ८ और ९ प्रकृतिक, तीन उदयस्थान हैं और प्रत्येक उदयस्थान में २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार २१ प्रकृतिक बंधस्थान में तीनों उदयस्थानों की अपेक्षा तीन सत्तास्थान हैं। दोनों बंधस्थानों की अपेक्षा यहाँ प्रत्येक जीवस्थान में १२ भंग हैं।

२१ प्रकृतिक बंधस्थान में २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान मानने का कारण यह है कि २१ प्रकृतिक बंधस्थान सासादन गुणस्थान में होता है और सासादन गुणस्थान २८ प्रकृतिक सत्ता वाले जीव को ही होता है क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टियों के दर्शनमोहविक की सत्ता पाई जाती है। इसीलिये २१ प्रकृतिक बंधस्थान में २८ प्रकृतिक सत्तास्थान माना जाता है।<sup>१</sup>

एक संजी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवस्थान में मोहनीय कर्म के कर्मादि स्थानों के संवेध का कथन जैसा पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये।

१ एकस्मिन्निवृत्तौ हि सासादनमात्रगुणस्थाने प्राप्यते, सासादनमात्रगुणस्थाने प्राप्यते, तेषां दर्शनमोहविकस्य नियमनो भावः, तेषां सासादनमात्रगुणस्थाने प्राप्यते। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३४



तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानुबंधी चतुष्क में से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीव-स्थानों में नहीं पाया जाता है। क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढ़ते ही नहीं हैं, अतः इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं है।

उक्त आठ जीवस्थानों में नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, कपाय चतुष्क और दो युगलों में से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। इस उदयस्थान में आठ भंग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानों में एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नहीं, अतः यहाँ वेद का विकल्प तो संभव नहीं किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कपाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भंग होते हैं।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भंग होते हैं अतः आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भंग होने हैं। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग हैं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अतः पूर्वोक्त आठ भंग ही होते हैं। दस प्रकार तीनों उदयस्थानों के कुल ३२ भंग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान में अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

पशोः पाँच, एकेन्द्रिय आदि पाँच जीवस्थानों में से प्रत्येक में एक-एक उदयस्थान है—सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक। सो





जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों को बतलाने के बाद अब नामकर्म के भंगों को बतलाते हैं—

पण दुग पणगं पण चउ पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।

पण छप्पणगं छच्छप्पणगं अट्ठट्ठ दसगं ति ॥३७॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी तह सुहुम वायरा चेव ।

विगलिंदिया उ तिन्नि उ तह य असन्नी य सन्नी य ॥३८॥

शब्दार्थ—पण दुग पणगं—पांच, दो, पांच, पण चउ पणगं—पांच, चार, पांच, पणगा—पांच-पांच, हवंति—होते हैं, तिन्नेव—तीनों ही (बंध, उदय और सत्तास्थान), पण छप्पणगं—पांच, छह, पांच, छच्छप्पणगं—छह, छह, पांच, अट्ठट्ठ—आठ, आठ, दसगं—दस, ति—इस प्रकार ।

सत्तेव—सातों ही, अपज्जत्ता—अपर्याप्त, सामी—स्वामी, तह—तथा, सुहुम—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, वायरा—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, चेव—और, विगलिंदिया—विकलेन्द्रिय पर्याप्त, तिन्नि—तीन, तह—वैसे ही, य—और, असन्नी—असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, सन्नी—संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ।

गाथायं—पांच, दो, पांच; पांच, चार, पांच; पांच, पांच, पांच पांच, छह, पांच; छह, छह, पांच और आठ, आठ, दस; ये बंध उदय और सत्तास्थान हैं ।

उनके काम से सातों अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलेन्द्रिय पर्याप्त, असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वामी जानना चाहिए ।

विशेषण—इन दो गाथाओं में जीवस्थानों में नामकर्म के भंगों का विचार किया गया है । पहली गाथा में तीन-तीन संख्याओं का संज्ञा किया गया है, जिससे ये पहली संख्या बंधस्थान की, दूसरी



चउ पणगं' और 'सुहुमं' पद का सम्बन्ध करते हैं। जिसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में पाँच बंधस्थान हैं, चा उदयस्थान हैं और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मरकर मनुष्य और तिर्यचगण में ही उत्पन्न होता है, जिससे उसके उन गतियों के योग्य कर्मों का बंध होता है। इसीलिए इसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाँच बंधस्थान माने गये हैं। इन पाँच बंधस्थानों के मानने के कारणों को पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ भी इन पाँच स्थानों के कुल भंग १३६१७ होते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। क्योंकि इन सूक्ष्म जीवों के आतप और उद्योत नामकर्म का उदय नहीं होता है। इसीलिये २७ प्रकृतिक उदयस्थान छोड़ दिया गया है।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान में वे ही प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों को बतला आये हैं। लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान विवक्षित होने से अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त का उदय कहना चाहिये। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान, अपान्तराल गति में होता है। प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ न होने से इसमें एक ही भंग होता है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, हुंउ-मरधान, उपधान तथा साधारण और प्रत्येक में से कोई एक प्रकृति, इन चार प्रकृतियों को मिलाते तथा निर्यनानुपूर्वी को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीरस्थ जीव को होता है। यह प्रत्येक और साधारण के विकल्प में दो भंग होते हैं।

अपान्तर शरीर पर्याप्त से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा २४ प्रकृति



पर्याप्ति हुए जीव को होता है। यहाँ भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह पाँच भङ्ग होते हैं।

यदि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के आतप और उद्योत में से किसी एक का उदय हो जावे तो २५ प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु आतप का उदय साधारण को नहीं होता है, अतः इस पक्ष में २६ प्रकृतिक उदयस्थान के यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति की अपेक्षा दो भंग होते हैं। लेकिन उद्योत का उदय साधारण और प्रत्येक, इनमें से किसी के भी होता है अतः इस पक्ष में साधारण और प्रत्येक तथा यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति, इनके विकल्प से चार भंग होते हैं। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल  $५ + २ + ४ = ११$  भंग हुए।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास सहित २६ प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आतप के साथ दो भङ्ग और उद्योत के साथ चार भङ्ग, इस प्रकार कुल छह भङ्ग हुए।

इन पाँचों उदयस्थानों के भङ्ग जोड़ने पर वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के कुल भङ्ग २६ होते हैं।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच मन्त्रास्थान होते हैं। इस जीवस्थान में जो पाँचों उदयस्थानों के २६ भङ्ग बतलाये हैं, उनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग २४ प्रकृतिक उदयस्थान में वैक्रिय वादर वायुमायिक के पक्ष भङ्ग की छोड़कर जैय चार भङ्ग तथा २५ और २६ प्रकृतिकों में प्रत्येक नाम और अयशःकीर्ति नाम के साथ प्राप्त होते

24

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्ति हुए जीव की अपेक्षा पराघात और अप्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी पूर्ववत् दो भङ्ग होते हैं।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान के अनन्तर २९ प्रकृतिक उदयस्थान का क्रम है। यह २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने प्राणापान पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास का उदय होने पर और दूसरा शरीर पर्याप्ति की प्राप्ति होने के पश्चात् उद्योत का उदय होने पर।<sup>१</sup> इन दोनों में से प्रत्येक स्थान में पूर्वोक्त दो-दो भङ्ग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भङ्ग हुए।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भापा पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत का उदय न होकर सुस्वर और दुःस्वर इन दो प्रकृतियों में से किसी एक का उदय होने पर होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को प्राप्त किया और अभी भापा पर्याप्ति की प्राप्ति नहीं हुई किन्तु इसी बीच में उसके उद्योत प्रकृति का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। इनमें से पहले प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति तथा सुस्वर और दुःस्वर के विकल्प से चार भङ्ग प्राप्त होते हैं। किन्तु दूसरे प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति के विकल्प से दो ही भङ्ग होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान में छह भङ्ग प्राप्त हुए।

१ यत् प्राणापानपर्याप्ति पर्याप्तश्चोच्छ्वासे शिष्टे एकोनविंशत्, अर्थात् प्राण दो गहरी, अथवा सप्तमेश्वरादि विमल उच्छ्वासमनुविष्ट उद्योतप्राप्ति से पुरोवर्तिनम्।





अब क्रमप्राप्त असंज्ञी पर्याप्त जीवस्थान में बंधादि स्थानों और उनके भङ्गों का निर्देश करते हैं। इसके लिये गाथाओं में निर्देश किया है—‘छच्छप्पणंगं’ ‘असंज्ञी य’ अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के छह बंधस्थान हैं, छह उदयस्थान हैं और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका विवेचन यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते ही हैं, किन्तु नरकगति और देवगति के योग्य प्रकृतियों का भी बंध कर सकते हैं। इसलिये इनके २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये छह बंधस्थान होते हैं और तदनुसार १३९२६ भङ्ग होते हैं।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ २१, २६, २८, २९ और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक स्थान में तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय अनादेय में से कोई एक तथा यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति में से इन २१ प्रकृतियों का उदय होता है। यह २१ प्रकृतिक उदयस अपान्तरालगति में ही पाया जाता है तथा सुभग आदि तीन युगल से प्रत्येक प्रकृति के विकल्प से ८ भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अनन्तर जब यह जीव शरीर को ग्रहण कर लेता है तब औदारि शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानों में से कोई एक संस्था छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक इन प्रकृतियों का उदय होता है। किन्तु यहाँ आनुपूर्वी नामक उदय नहीं होता है। अतएव उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान में प्रकृतियों को गिनाने और तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर उदयस्थान होता है। यहाँ छह संस्थान और छह संहनन



यहाँ कुल भंग ११५२ होते हैं। इस प्रकार असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के सब उदयस्थानों के कुल ४६०४ भङ्ग होते हैं।

असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में ६२, ८८, ८६, ८० और प्रकृतिक ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ८ भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के २८८ भङ्ग; इनमें से प्रकृतिक भङ्ग में पूर्वोक्त पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि ७८ प्रकृतिक की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव हैं वे सब असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं तो उनके २१ और प्रकृतिक उदयस्थान रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जा संभव है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष उदयस्थानों और उनके भङ्ग में ७८ के बिना शेष चार-चार सत्तास्थान ही होते हैं।

इस प्रकार से अभी तक तेरह जीवस्थानों के नामकर्म के बंधा स्थानों और उनके भङ्गों का विचार किया गया। अब शेष र चौदहवें संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के बंधादि स्थानों व भङ्ग का निर्देश करते हैं। इस जीवस्थान के बंधादि स्थानों के लिये गाय में संकेत किया गया है—'अदृग्दृग्दसगं ति सन्नी य' अर्थात् संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में आठ बंधस्थान, आठ उदयस्थान और दस सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नाम कर्म के २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ बंधस्थान बतलाये हैं। ये आठों बंधस्थान संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के होते हैं और उनके १३६४५ भङ्ग संभव हैं। क्योंकि इनके चारों गति सम्बन्धी प्रकृतियों का बंध सम्भव है, इसीलिये २३ प्रकृतिक आदि बंधस्थान इनके कहे हैं। तीर्थकर नाम और आहारक नष्ट का भी इनके बंध होता है इसीलिये ३१ प्रकृतिक बंधस्थान कहा है। और जीवस्थान में उद्यम और क्षयक दोनों श्रेणियाँ पाई जाती हैं इसीलिये १ प्रकृतिक बंधस्थान भी कहा है।



इस प्रकार चौदह जीवस्थानों में बंधादि स्थानों और उनके भंगों का विचार किया गया। अब उनके परस्पर संवेध का विचार करते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के २३ प्रकृतिक बंधस्थान में २१ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान में भी पांच सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर दोनों उदयस्थानों के १० सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २६ और ३० प्रकृतियों का बंध करने वाले उक्त जीवों के दो-दो उदयस्थानों की अपेक्षा दस-दस सत्तास्थान होते हैं। जो कुल मिलाकर ५० हुए। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि अन्य छह अपर्याप्तों के ५०-५० सत्तास्थान जानना किन्तु सर्वत्र अपने-अपने दो-दो उदयस्थान कहना चाहिये।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक, ये पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। अतः पांच को चार से गुणित करने पर २० हुए तथा प्रत्येक उदयस्थान में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं अतः २० को ५ से गुणा करने पर १०० सत्तास्थान सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के भी पूर्वोक्त २३, २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक, पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पांच-पांच उदयस्थान होते हैं, अतः ५ को ५ से गुणा करने पर २५ हुए। इनमें से अन्तिम पांच उदयस्थानों में ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भंग २० हुए और भंग २० उदयस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भंग १०० हुए। इस प्रकार यहाँ कुल भंग १२० होते हैं।

द्वैन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २७ और ३० प्रकृतिक, ये पांच



चाहिये । २५ प्रकृतिक बंधस्थान में २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान बतलाये हैं सो इनमें से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानों में तो पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देवों के ही होते हैं, अतः इनमें ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । शेष रहे चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में ७८ प्रकृतिक के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल ३० सत्तास्थान होते हैं । २६ प्रकृतिक बंधस्थान में भी इसी प्रकार ३० सत्तास्थान होते हैं ।

२८ प्रकृतिक बंधस्थान में आठ उदयस्थान होते हैं । इनमें से २५, २६, २७, २८ और २९ प्रकृतिक इन छह उदयस्थानों में ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । ३० प्रकृतिक उदयस्थान में ६२, ८८, ८९ और ९० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ६२, ८८ और ८९ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल १६ सत्तास्थान होते हैं ।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान में ३० प्रकृतिक सत्तास्थान तो २५ प्रकृतिक का बंध करने वाले के समान जानना किन्तु यहाँ कुछ विशेषण है कि जब अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक का बंध करता है तब उसके २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक पाँच उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में ६३ और ८९ प्रकृतिक, दो सत्तास्थान होते हैं जिनका जोड़ १० हुआ ।

इसी प्रकार विक्रिया करने वाले संयत और संयतासंयत जीवों में भी २९ प्रकृतिक बंधस्थान के समय २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में ६३ और ८९ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं । जिनका जोड़ ४ होता है अथवा आहारक संयत में इन दो उदयस्थानों में ६३ प्रकृतियों की सत्ता होती है और तीर्थंकर सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ८९ की सत्ता होती है ।





दो सत्तास्थान जानना चाहिए । २१ तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान में ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । २९ प्रकृतिक उदयस्थान में ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि २९ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थकर और सामान्य केवली दोनों को प्राप्त होता है । उनमें से यदि तीर्थकर को २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ८० और ७६ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होंगे और यदि सामान्य केवली के २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होंगे । इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान में भी चार सत्तास्थान प्राप्त होते हैं । ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं, क्योंकि यह उदयस्थान तीर्थकर केवली के ही होता है । ६ प्रकृतिक उदयस्थान में ८०, ७६ और ६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से प्रारम्भ के दो सत्तास्थान तीर्थकर के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और अन्तिम ६ प्रकृतिक सत्तास्थान अयोगिकेवली गुणस्थान के अंत समय में होता है । ८ प्रकृतिक उदयस्थान में ७६, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से आदि के दो सत्तास्थान (७६, ७५) सामान्य केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक प्राप्त होते हैं और अन्तिम ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय में प्राप्त होता है । इस प्रकार ये २६ सत्तास्थान होते हैं ।

अब यदि इन्हें पूर्वोक्त २०८ सत्तास्थानों में शामिल कर दिया जाये तो सभी पंचेन्द्रिय पर्यान्ति जीवस्थान में कुल २३४ सत्तास्थान होने हैं ।

जीवस्थान पर्यान्तिजीवस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों, उदयस्थानों और न नीचे निम्न अनुसार है । पहले बंधस्थानों और



६ चतुरिन्द्रिय अप०		१० चतु० पर्याप्त		११ असं० पंचे० अप०		१२ असं० पं० पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२८	६२४०	२८	६२४०	२८	६२४०	२८	६
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	२८	६२४०
						३०	४६३२
५	१३६१७	५	१३६१७	५	१३६१७	६	१३६२६

१३ संजी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६
२८	६२४०	२८	६
३०	४६३२	२८	६२४०
		३०	४६४१
		३१	१
		१	१
५	१३६१७	८	१३६४४



६ चतुरि० अप०		१० चतुरि० पर्याप्त		११ असं० पंचे० अप०		१२ असं० पंचे० पर्याप्त	
२१	१	२१	२	२१	२	२१	५
२६	१	२६	२	२६	२	२६	२५५
		२५	२	असंजी मनुष्य १		२५	५७६
		२६	४			२६	११५२
		३०	६			३०	१७२५
		३१	४			३१	११५२
२	२	३	२०	२	६	६	४६०४

१३ संजी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
२१	२	२१	२५
२६	२	२५	२६
		२६	५७६
		२७	२६
		२५	११६६
		२६	१७७२
		३०	२५६५
		३१	११५२
		२०	१
		६	१
		५	१
		०	५
१	४	११	७३४८



इस प्रकार से जीवस्थानों में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय व सत्ता स्थान तथा उनके भंगों का कथन करने के बाद अब गुणस्थानों में भंगों का कथन करते हैं।

### गुणस्थानों में संवेध भंग

सर्वप्रथम गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बंधादि स्थानों का कथन करते हैं—

**नाणंतराय तिविहमवि दससु दो होंति दोसु ठाणसुं ।**

शब्दार्थ—नाणंतराय—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म, तिविहमवि—तीन प्रकार से (बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा), दससु—आदि के दस गुणस्थानों में, दो—दो (उदय और सत्ता), होंति—होता है, दोसु—दो (उपशांतमोह और क्षीणमोह में), ठाणसुं—गुणस्थानों में।

भाष्य—प्रारम्भ के दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है और दो गुणस्थानों (उपशांतमोह, क्षीणमोह) में उदय और सत्ता की अपेक्षा दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—पूर्व में चौदह जीवस्थानों में आठ कर्मों के बंध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके संवेध भंगों का कथन किया गया। अब गुणस्थानों में उनका कथन करते हैं।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बारे में यह नियम है कि ज्ञानावरण की पाँचों और अन्तराय की पाँचों प्रकृतियों का वन्धविच्छेद दमयें मुक्षमसंशय गुणस्थान के अन्त में तथा उदय और सत्ता का विच्छेद दमयें क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में होता है। अतएव दमयें से जाना है कि पहले मिश्रादृष्टि गुणस्थान में केवल दमयें तक दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के पाँच





उदय और नी प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृति उदय और नी प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं। यद्यपि स्त्यानद्वित्रिक का उदय प्रमत्तसंयत गुणस्थान के अंतिम समय तक ही हो सकता है, फिर भी इससे पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के कथन में कोई अंतर नहीं आता है, सिर्फ विकल्प रूप प्रकृतियों में ही अंतर पड़ता है। छठे गुणस्थान तक निद्रा आदि पाँचों प्रकृतियाँ विकल्प से प्राप्त होती हैं, आगे निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ ही विकल्प से प्राप्त होती हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला की भी बंधव्युच्छिन्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानों में बंध में चार प्रकृतियाँ रह जाती हैं, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियों की रहती है। अतः अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक तीन गुणस्थानों में चार प्रकृति बंध, चार प्रकृतिक उदय और नी प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृति बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और नी प्रकृतिक सत्ता, यह दो भंग प्राप्त होते हैं—‘चउबंध तिगे चउ पण नवंस’।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिए क्योंकि ऐसा नियम है कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि ही होना है, क्षपकश्रेणि में नहीं होता है। अतः क्षपकश्रेणि में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नहीं होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागों के व्यतीत होने पर स्त्यानद्वित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है। जिससे छह प्रकृति की ही सत्ता रहती है। अतः अनिवृत्तिकरण के अंतिम संस्थात भाग और सूक्ष्मसंपराय इन दो क्षपक गुणस्थानों में चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भङ्ग प्राप्त होता है—‘हुगु जुयन दग्गंगा’।



का दूसरा भङ्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार क्षीणमोह गुणस्थान में भी दो भंग प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार से जानावरण, अंतराय और दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थानों को बतलाने के बाद अब वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मों के भंगों को बतलाते हैं।

### वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥४१॥

शब्दार्थ—वेयणियाउयगोए—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के, विभज्ज—विभाग करके, मोहं—मोहनीय कर्म के, परं—इसके बाद, वोच्छं—कहेगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों का कथन करने के बाद मोहनीय कर्म के भंगों का कथन करेंगे।

विशेषार्थ—गाथा में वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों के विभाग करने की सूचना दी है किन्तु उनके कितने-कितने भंग होते हैं यह नहीं बतलाया है। अतः आचार्य मलयगिरि की टीका में भाष्य की गाथाओं के आधार पर वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के जो भंग विकल्प बतलाये हैं, उनको यहाँ स्पष्ट करते हैं।

भाष्य की गाथा में वेदनीय और गोत्र कर्म के भङ्गों का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

चउ एस्सु दोण्णि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।

गोए पण चउ दो तिसु एगज्जुसु दोण्णि एक्कम्मि ॥

अर्थात् वेदनीय कर्म के छह गुणस्थानों में चार, सात में दो और एक में चार भङ्ग होते हैं तथा गोत्रकर्म के पहले में पाँच, दूसरे में चार तीसरे आदि तीन में दो, छठे आदि आठ में एक और एक में दो भङ्ग होते हैं जिसका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।



स्थानों के विकल्पों को बतलाने के बाद अब चौदहवें गुणस्थान के भङ्गों को बतलाने के लिये कहते हैं कि 'एगे चउ' अर्थात् एक गुणस्थान—चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में चार भङ्ग होते हैं। क्योंकि अयोगिकेवली गुणस्थान में साता वेदनीय का भी बंध नहीं होता है, अतः वहाँ बंध की अपेक्षा तो कोई भङ्ग प्राप्त नहीं होता है किन्तु उदय और सत्ता की अपेक्षा भङ्ग बनते हैं। फिर भी जिसके इस गुणस्थान में असाता का उदय है, उसके उपान्त्य समय में साता की सत्ता का नाश हो जाने से तथा जिसके साता का उदय है उसके उपान्त्य समय में असाता की सत्ता का नाश हो जाने से उपान्त्य समय तक—१. साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, २. असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भङ्ग प्राप्त होते हैं। तथा अंतिम समय में, ३. साता का उदय और साता की सत्ता तथा ४. असाता का उदय और असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार अयोगिकेवली गुणस्थान में वेदनीय कर्म के चार भंग बनते हैं।

अब गोत्रकर्म के भंगों को गुणस्थानों में बतलाते हैं।

गोत्रकर्म के बारे में भी वेदनीय कर्म की तरह एक विशेषता त यह है कि साता और असाता वेदनीय के समान उच्च और नीच गोत्र बंध और उदय की अपेक्षा प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं, एक काल में इन दोनों में ने किसी एक का बंध और एक का ही उदय हो सकता है, लेकिन

१. 'एकस्मिन्' अयोगिकेवल्लिनि सत्त्वारी भंगा, ते चेमे—असातस्मोदयः सातामाते सती, अथवा सातस्मोदयः सातामाते सती, एतौ, द्वौ विकल्पाश्च गोत्रिकेवल्लिनि द्विचरमसमये यावत्प्राप्येते, चरमसमये तु असातस्मोदयः असातस्य सत्ता सस्य द्विचरम-नामये सातं क्षीणम्, यस्य सत्तात् द्विचरम-नामये असातस्य विकल्पः—सातस्मोदयः सातस्य सत्ता।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०६



गुणस्थानों में एक उच्चगोत्र का ही बंध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्व गुणस्थान के समान सासादन गुणस्थान में भी किसी एक का बंध किसी एक का उदय और दोनों की सत्ता बन जाती है। इस हिसाब से यहाँ चार भंग पाये जाते हैं और वे चार भाग वही हैं जिनका मिथ्यात्व गुणस्थान के भंग १, २, २ और ४ में उल्लेख किया गया है।

‘दो तिसु’ अर्थात् तीसरे, चौथे, पांचवें—मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरति गुणस्थानों में दो भंग होते हैं। क्योंकि तीसरे से लेकर पांचवें गुणस्थान तक बंध एक उच्च गोत्र का ही होता है किन्तु उच्च और सत्ता दोनों की पाई जाती है। इसलिये इन तीन गुणस्थानों में—  
१. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, तथा  
२. उच्च का बंध, नीच का उदय और नीच-उच्च की सत्ता, यह दो भंग पाये जाते हैं। यहां कितने ही आचार्यों का यह भी अभिमत है कि पांचवें गुणस्थान में उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यही एक भंग होता है। इस विषय में आगम वचन है कि—

सामन्नेषं वयजार्हं उच्चागोयस्त उदओ होइ ।

अर्थात्—सामान्य से संयत और संयतासंयत जाति वाले जीव के उच्च गोत्र का उदय होता है।

‘एगऽद्वमु’—यानी छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थानों में से प्रत्येक गुणस्थान में एक भंग प्राप्त होता है। क्योंकि छठे से लेकर दसवें मूढमसंपराय गुणस्थान तक ही उच्च गोत्र का बंध होता है। अतः छठे, सातवें, आठवें, नौवें, दसवें—प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, प्रपूर्वकरण, अनिद्वानि वादर और मूढमसंपराय—  
----- में से प्रत्येक में—उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-





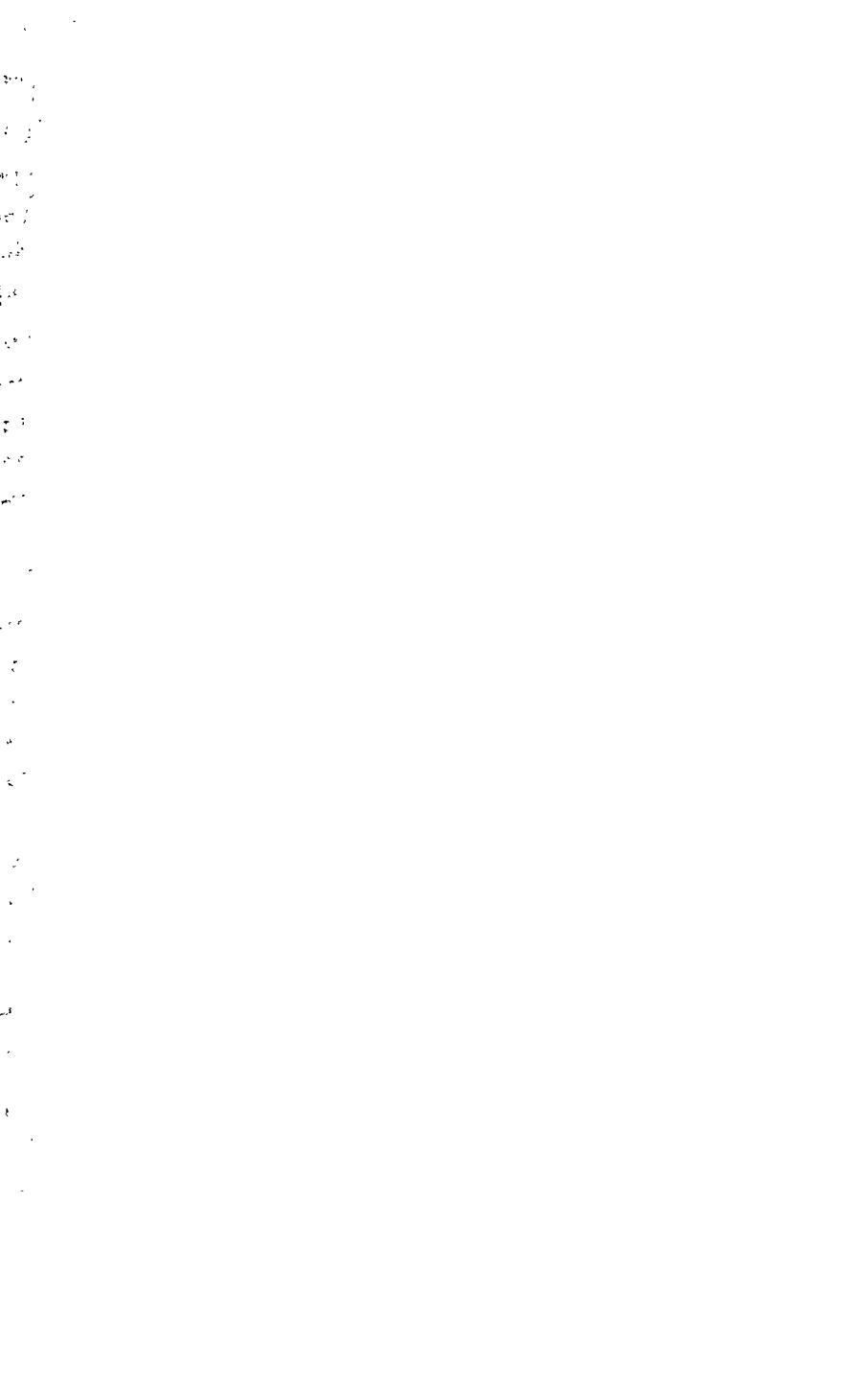
मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आयुकर्म के २८ भंग होते हैं। क्योंकि चारों गतियों के जीव मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और नारकों के पाँच तिर्यचों के नौ, मनुष्यों के नौ और देवों के पाँच, इस प्रकार आयु के २८ भंग पहले बतलाये गये हैं। अतः वे सब भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में संभव होने से २८ भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में कहे हैं।

सासादन गुणस्थान में २६ भंग होते हैं। क्योंकि नरकायु का वं मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होने से सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्य नरकायु का वंघ नहीं करते हैं। अतः उपर्युक्त २८ भंगों में से— १ भुज्यमान तिर्यचायु, बध्यमान नरकायु और तिर्यच-नरकायु की सत्ता, तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये दो भंग कम होने जाने से सासादन गुणस्थान में २६ भंग प्राप्त होते हैं।<sup>१</sup>

तीसरे मिश्र गुणस्थान में परभव संबंधी आयु के वंघ न होने के नियम होने से परभव संबंधी किसी भी आयु का वंघ नहीं होता है। अतः पूर्वोक्त २८ भंगों में से वंघकाल में प्राप्त होने वाले नारकों के दो, तिर्यचों के चार, मनुष्यों के चार और देवों के दो, इस प्रकार  $२ + ४ + ४ + २ = १२$  भंगों को कम कर देने पर १६ भंग प्राप्त होते हैं।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में २० भंग होते हैं। क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में तिर्यचों और मनुष्यों में से प्रत्येक के नारक, तिर्यच और मनुष्य आयु का वंघ नहीं होने से तीन-तीन भंग

१ यद्यपि तिर्यचों मनुष्या या सासादनमाने धर्मेमाना नरकायु वंघनति, तथा यथा न परमयायुर्वंघकाले एकैको भंगो न प्राप्यते



आयुक्रम का बन्ध सातवें गुणस्थान तक ही होता है। आगे आठवें अपूर्वकरण आदि शेष गुणस्थानों में नहीं होता है। किन्तु एक विशेषतः है कि जिसने देवायु का बन्ध कर लिया, ऐसा मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और जिसने देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध किया है, वह, उपशमश्रेणि पर आरोहण नहीं करता है—

तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढि न आरुहइ ।<sup>१</sup>

तीन आयु का बन्ध करने वाला (देवायु को छोड़कर) जीव श्रेणि पर आरोहण नहीं करता है। अतः उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि उपशांतमोह गुणस्थान पर्यन्त आठ, नौ, दस और ग्यारह, इन चार गुणस्थानों में दो-दो भङ्ग प्राप्त होते हैं—‘दो चउसु’। वे दो भङ्ग इस प्रकार हैं— १ मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता, २ मनुष्यायु का उदय मनुष्य-देवायु की सत्ता। इनमें से पहला भङ्ग परभव संबंधी आयु बन्धकाल के पूर्व में होता और दूसरा भङ्ग उपरत बन्धकाल में होता है।

लेकिन क्षणिकश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों में भी मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है— ‘तीगु एक्क’।

उस प्रकार प्रत्येक गुणस्थान में आयुक्रम के सम्भव भङ्गों का विस्तार किया गया कि प्रत्येक गुणस्थान में कितने-कितने भङ्ग होते हैं।

१४ गुणस्थानों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गी और अत्राय, इन छह कर्मों का विवरण इस प्रकार है—

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

शब्दार्थ—गुणठाणोसु—गुणस्थानों में, अट्ठसु—आठ में, एक्केक्कं—एक-एक, मोहबंधठाणोसु—मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से, पंच—पाँच, अनियट्ठिठाणे—अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में, बंधोवरमो—बंध का अभाव है, परं—आगे, तत्तो—उससे (अनिवृत्ति वादर गुणस्थान से) ।

गाथार्थ—मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से एक, एक बंधस्थान होता है तथा अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में पाँच और अनन्तर आगे के गुणस्थानों में बंध का अभाव है ।

विशेषार्थ—इस गाथा में मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत् स्थानों में से बंधस्थानों को बतलाया है । सामान्य से मोहनीय कर्म बंधस्थान पहले बताये जा चुके हैं, जो २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, २, १ प्रकृतिक हैं । इन दस स्थानों को गुणस्थानों में घटाते हैं ।

‘गुणठाणोसु अट्ठसु एक्केक्कं’ अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान मोहनीय कर्म का एक-एक बंधस्थान होता है । वह इस प्रकार जान चाहिए कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में एक २२ प्रकृतिक, सासाद गुणस्थान में २१ प्रकृतिक, मिश्र गुणस्थान और अविरत सम्यग्दर्श गुणस्थान में १७ प्रकृतिक, देशविरति में १३ प्रकृतिक तथा प्रमा मंयत, अप्रमत्तमंयत और अपूर्वकरण में ९ प्रकृतिक बंधस्थान होते हैं । इनके भंगों का विवरण मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रकार में कहे गये अनुसार जानना चाहिए, लेकिन यहाँ इतनी विवेचना कि अविरत और शोक का बंधविच्छेद प्रमत्तमंयत गुणस्थान में जाना है अतः अप्रमत्तमंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में नौ प्राप्ति में एक-एक ही भंग प्राप्ति होता है । पहले जो नौ प्राप्ति



सत्ताइ दसउ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा ।  
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्टेव ॥४३॥  
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चपुव्वम्मि ।  
अनियट्ठिबायरे पुण इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४४॥  
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा ।  
भंगाणं च पमाणं पुव्वुट्ठिठेण नायव्वं ॥४५॥

शब्दार्थ—सत्ताइ दसउ—सात से लेकर दस प्रकृति तक,  
मिच्छे—मिथ्यात्व गुणस्थान में, सासायण मीसए—सासादन और  
मिथ्र में, नवुक्कोसा—सात से लेकर नौ प्रकृति तक, छाईनवउ—  
छह से लेकर नौ तक, अविरए—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में,  
देसे—देशविरति गुणस्थान में, पंचाइअट्टेव—पांच से लेकर आठ  
प्रकृति तक,

विरए खओवसमिए—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में, चउरा-  
ईसत्त—चार से सात प्रकृति तक, छच्च—और छह तक, अपुव्वम्मि  
—अपूर्वकरण गुणस्थान में, अनियट्ठिबायरे—अनिवृत्ति बादर गुण-  
स्थान में, पुण—तथा, इक्को—एक, व—अथवा दुवे—दो, उदयंसा—  
उदयस्थान ।

एगं—एक, सुहुमसरागो—सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाला,  
वेएइ—वेदन करता है, अवेयगा—अवेदक, भवे—होते हैं, सेसा—  
बाकी के गुणस्थान वाले, भंगाणं—गंगों का, च—और, पमाणं—  
प्रमाण, पुव्वुट्ठिठेण—पहले कहे अनुसार, नायव्वं—जानना  
चाहिए ।

(ग) दमगराजयादि चउतिमतिट्ठाण णवट्ठमगसगादि चउ ।  
दाणा द्यादि निय न व चउवीगमदा अपुव्वो ति ॥  
पदवट्ठाण दोणं पणववे होदि दोणमेवसस ।  
पदवट्ठाणवट्ठाणमे मेमेमेय हये दाणं ॥





यद्यपि गाथा ११ में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की सामान्य विवेचना के प्रसंग में विशेष स्पष्टीकरण किया जा चुका है, फिर भी गुणस्थानों की अपेक्षा उनका कथन करने के लिए गाथानुसार यहाँ विवेचन करते हैं।

‘सत्ताइ दसउ मिच्छे’ अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। मिथ्यात्व अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोधादि में से अन्ततः तीन क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल, शोक-अरति युगल में से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियों का ध्रुव रूप उदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन ध्रुवोदया सात प्रकृतियों में भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनन्तानुबन्धी कपाय तत्त्व में से किसी एक कपाय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा उन सात प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा अथवा भय, अनन्तानुबन्धी अथवा जुगुप्सा अनन्तानुबन्धी में से किन्हीं दो को मिलाने से नौ प्रकृतिक और उन सात प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी अन्यतम एक कपाय को एक साथ मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन चार उदयस्थानों में सात की एक, आठ की तीन, नौ की तीन और दस की एक, इस प्रकार भगों की आठ चौबीसी प्राप्त होती हैं।

सामादन और मिश्र गुणस्थान में सात, आठ और नौ प्रकृतिक, तीन-तीन उदयस्थान होते हैं।

सामादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदों में कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियों का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान में भय या जुगुप्सा में से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान



छह प्रकृतिक उदयस्थान में भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर भी नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और विकल्प नहीं होने से भंगों की एक चौबीसी प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थान में कुल मिलाकर आठ चौबीसी होती हैं।

‘देसे पंचाइ अट्टे व’—देशविरत गुणस्थान में पाँच से लेकर आठ प्रकृति पर्यन्त चार उदयस्थान हैं—पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम दो क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल। एतन् भङ्गों की एक चौबीसी होती है। छह प्रकृतिक उदयस्थान उक्त पाँच प्रकृतियों में भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व में से किसी एक मिलाने से बनता है। इस स्थान में प्रकृतियों के तीन विकल्प होने तीन चौबीसी होती हैं। सात प्रकृतिक उदयस्थान के लिये पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा या भय, वेदक सम्यक्त्व या जुगुप्सा वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाया जाता है। यहाँ भी तीन विकल्पों के कारण भङ्गों की तीन चौबीसी जानना चाहिये। पूर्वोक्त पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को युगपत् मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। प्रकृतियों का विकल्प न होने से भङ्गों की एक चौबीसी होती है।

पाँचवें देशविरत गुणस्थान के अनन्तर छठे, सातवें प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानों का संकेत करने के लिये गायाने ‘विग्गं गओवगमिण्’ पद दिया है—जिसका अर्थ क्षायोपशमिक विग्गं होता है। क्योंकि क्षायोपशमिक विग्गं, यह मंजा इन दो गुणस्थानों की ही होती है। उसके आगे के गुणस्थानों के जीवों को या तो उपपन्नमह मंजा दी जाती है या क्षयक। उपपन्नमह्रेणि चट्ठे वाने की १२ क्षयकश्रेणि चट्ठे वाने को क्षयक कहते हैं। अतः



उदयस्थान जानना चाहिये तथा भंगों की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार आठवें गुणस्थान में भंगों की चार चौबीसी होती हैं।

‘अनियद्विवायरे पुण इक्को वा दुवे व’—अर्थात् नीवें अनिवृत्ति-वादर गुणस्थान में दो उदयस्थान हैं—दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। यहाँ दो प्रकृतिक उदयस्थान में संज्वलन कपाय चतुष्क में से किसी एक कपाय और तीन वेदों में से किसी एक वेद का उ होता है। यहाँ तीन वेदों से संज्वलन कपाय चतुष्क को गुणित कर पर १२ भंग प्राप्त होते हैं। अनन्तर वेद का विच्छेद हो जाने पर एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक वंध के समय होता है। अर्थात् सवेद भाग तक दो प्रकृतिक और अवेद भाग में एक प्रकृतिक उदयस्थान समझना चाहिये। यद्यपि एक प्रकृतिक उदय में चार प्रकृतिक वंध की अपेक्षा चार, तीन प्रकृतिक वंध की अपेक्षा तीन, दो प्रकृतिक वंध की अपेक्षा दो, और एक प्रकृतिक वंध की अपेक्षा एक, इस प्रकार कुल दस भंग वतलाये हैं किन्तु यहाँ वंधस्थानों के भेद की अपेक्षा न करके सामान्य से कुल चार भंग विवक्षित हैं।

दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में एक सूक्ष्म लोभ का उदय होने से वहाँ एक ही भंग होता है—‘एगं सुहुमसरागो वेएइ’। इस प्रकार एक प्रकृतिक उदयस्थान में कुल पाँच भंग जानना चाहिये।

दसवें गुणस्थान के बाद आगे के उपशान्तमोह आदि गुणस्थानों में मोहनीयकर्म का उदय न होने से उन गुणस्थानों में उदय अपेक्षा एक भी भंग नहीं होता है।

इस प्रकार यहाँ गाथाओं के निर्देशानुसार गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों और उनके भंगों का कथन किया गया है और अंत में जो भंगों का प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रम से जानने का



गुणस्थानों में योग आदि की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों की संख्या जानने के सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि जिस गुणस्थान में योगादिक की जितनी संख्या है उसमें उस गुणस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दों को गुणित कर देने पर योगादि की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान में उदयविकल्प और पदवृन्द की संख्या ज्ञात हो जाती है। अतः यह जानना जरूरी है कि किस गुणस्थान कितने योग आदि हैं। परन्तु इनका एक साथ कथन करना अशक्य होने से क्रमशः योग, उपयोग और लेश्या की अपेक्षा विचार करते हैं।

योग की अपेक्षा भंगों का विचार इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थान में १३ योग और भंगों की आठ चौबीसी होती हैं। इनमें से चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक और वैक्रिय काययोग इन दस योगों में से प्रत्येक में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होती है, जिससे १० को ८ से गुणित कर देने पर ८० चौबीसी हुई। किन्तु औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियमिश्र काययोग और कर्मण काययोग इन तीन योगों में से प्रत्येक में अनन्तानुबन्धी के उदय सहित यानी चार-चार चौबीसी होती हैं। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने पर जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है, उसको जब तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता तब तक मरण नहीं होता। अतः इन तीन योगों में अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी सम्भव नहीं हैं। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिसमें अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की है, ऐसा जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तब उसके अनन्तानुबन्धी का उदय एक प्रलयी काल के बाद होता है, ऐसे जीव का अनन्तानुबन्धी का उदय होने पर ही मरण होता है, पहले नहीं। जिससे उक्त तीनों योगों में अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी नहीं पाई जाती है।





स्त्रीवेद के साथ सम्यग्दृष्टियों का उत्पाद देखा जाता है।<sup>१</sup> इसी बात को चूर्णि में भी स्पष्ट किया है—

कयाइ होज्ज इत्यिवेयोसु वि ।

अर्थात्—कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियों में भी उत्प होता है। तथा चौथे गुणस्थान के औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवे और नपुंसकवेद नहीं होता है। क्योंकि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी तिर्य और मनुष्यों में अविरत सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः औदारिक मिश्र काययोग में भंगों की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर आठ अष्टक प्राप्त होते हैं। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी सम्यग्दृष्टि जीव औदारिक-मिश्र काययोगी नहीं होता है। यह बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए।<sup>२</sup> इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दस योगों की ८० चौबीसी, वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग, इन दोनों में प्रत्येक के आठ-आठ षोडशक और औदारिकमिश्र काययोग के आठ अष्टक होते हैं। जिनके भंग  $८० \times २४ = १९२०$  तथा  $१६ \times ८ = १२८$  पुनः  $१६ \times ८ = १२८$  और  $८ \times ८ = ६४$  होते हैं, इनका कुल जोड़

१ (क) ये चाविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रियमिश्रे कार्मणकाययोगे च प्रत्येकमष्टा-  
पष्टौ उदयस्थानविकल्पा एषु स्त्रीवेदो न सम्यते, वैक्रियकाय-  
योगेषु स्त्रीवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्। एतच्च  
प्रायोवृत्तिमाश्रित्योक्तम्, अन्यथा कदाचित् स्त्रीवेदिष्वपि मध्ये तदु-  
त्पादो भवति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७

(ग) दिगम्बर परम्परा में यही एक मत मिलता है कि स्त्रीवेदियों में  
सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता है।

२ अविरतसम्यग्दृष्टेर्औदारिकमिश्रकाययोगे मेऽष्टाउदयस्थानविकल्पास्ते पुरीद-  
महिता एव प्राप्नुवन्ते, न स्त्रीवेद-नपुंसकवेदमहिताः तिर्यन्-मनुष्येषु  
स्त्रीवेद-नपुंसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्, एतच्च प्राय-  
वृत्तिमोक्षम् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७



जो जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थान में वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को प्राप्त करके अप्रमत्तसंयत हो जाता है, उसके अप्रमत्त संयत अवस्था में रहते हुए ये दो योग होते हैं। वैसे अप्रमत्तसंयत जीव वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारम्भ नहीं करता है, अतः इस गुणस्थान में वैक्रियमिश्र काययोग और आहारकमिश्र काययोग नहीं माना है। इसी कारण सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक, वैक्रिय व आहारक काययोग, ये ग्यारह योग होते हैं। इन योगों में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होनी चाहिये थीं। किन्तु आहारक काययोग में स्त्रीवेद नहीं होने से दस योगों में तो भंगों की आठ चौबीसी और आहारक काययोग में आठ षोडशक प्राप्त होते हैं। इन सब भंगों का २०४८ होता है जो अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में योगापेक्षा होते हैं।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में ती योग और प्रत्येक योग में की चार चौबीसी होती हैं। अतः यहाँ कुल भंग ८६४ होते हैं। अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में योग ९ और भंग १६ होते हैं अतः को ९ से गुणित करने पर यहाँ कुल भंग १४४ प्राप्त होते हैं व दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में योग ९ और भंग १ है। अतः य कुल ९ भंग प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त दसों गुणस्थानों के कुल भंगों को जोड़ने पर  $२२०८ + १२१६ + ८६० + २२४० + २११२ + २३६८ + २०४८ + ८६४ + १४४ + ९ = १४१६९$  प्रमाण होता है। कहा भी है—

चउत्तरस य सहस्रादं सयं च गुणहतरं उदयमाणं ।\*

अर्थात् योगों की अपेक्षा मोहनीयकर्म के कुल उदयविकल्पों का प्रमाण १४१६९ होता है।



योगों की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयविकल्पों का विचार करने के अनन्तर अब क्रम प्राप्त पदवृन्दों का विचार करने के लिये अन्तर्भाष्य गाथा उद्धृत करते हैं—

अद्विती वत्तीसं वत्तीसं तद्विमेव बावन्ना ।  
चोयालं चोयालं बीसा वि य मिच्छमाईसु ॥

अर्थात्—मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० उदयपद होते हैं ।

यहाँ उदयपद से उदयस्थानों की प्रकृतियां ली गई हैं । जैसे कि मिथ्यात्व गुणस्थान में १०, ६, ८ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं और इनमें से १० प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसकी दस प्रकृतियां हुई । ६ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनने के कारण तीन हैं अतः उसकी २७ प्रकृतियां हुई । आठ प्रकृतिक उदयस्थान भी तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनता है अतः उसकी २४ प्रकृतियां हुई और सात प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसकी ७ प्रकृतियां हुई । इस प्रकार मिथ्यात्व में चारों उदयस्थानों की १० + २७ + २४ + ७ = ६८ प्रकृतियां होती हैं । सारादन आदि गुणस्थानों में जो ३२ आदि उदयपद बननाये हैं, उनको भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।

अब यदि इन आठ गुणस्थानों के सब उदयपद (६८ से लेकर २० तक) जोड़ दिये जायें तो उनका कुल प्रमाण ३५२ होता है । किन्तु इनमें से प्रत्येक उदयपद में चौबीस-चौबीस भज्ज होते हैं, अतः ३५२ को २४ से गुणित करने पर ८४४८ प्राप्त होते हैं । ये पदवृन्द अन्तर्भाष्य गुणस्थान तक के जानना चाहिये । इनमें अनिवृत्तिकरण के पदमंथराय गुणस्थान का १, कुल २६ भज्ज मिला देने पर २६ × ८४४८ प्राप्त होते हैं । ये मिथ्यात्व गुणस्थान में लेकर ११ गुणस्थान तक के सामान्य से पदवृन्द हुए ।



के भङ्ग कम कर देना चाहिये । इसका तात्पर्य यह हुआ कि १३ योगों की अपेक्षा १२ से ३२ को गुणित करके २४ से गुणित करें और वैक्रिय मिश्र की अपेक्षा ३२ को १६ से गुणित करें । इस प्रकार  $१२ \times ३२ = ३८४ \times २४ = ९२१६$  तथा वैक्रियमिश्र के  $३२ \times १६ = ५१२$  हुए और ९२१६ और ५१२ का कुल जोड़ ९७२८ होता है । यही ९७२८ पदवृत्त सासादन गुणस्थान में होते हैं ।

मिश्र गुणस्थान में दस योग और उदयपद ३२ हैं । यहाँ स योगों में सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव हैं, अतः १० व ३२ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर  $(३२ \times १० = ३२० \times २४ = ७६८०)$  ७६८० पदवृन्द प्राप्त होते हैं ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में योग १३ और उदयपद ६० होते हैं । सो यहाँ १० योगों में तो सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव होने से १० से ६० को गुणित करके २४ से गुणित कर देने पर १० योगों संबंधी कुल भङ्ग १४४०० प्राप्त होते हैं । किन्तु वैक्रियमिश्र काययोग और कर्मण काययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होने से स्त्रीवेद संबंधी भङ्ग प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिये यहाँ २ को ६० से गुणित करके १६ से गुणित करने पर उक्त दोनों योगों सम्बन्धी कुल भङ्ग १६२० प्राप्त होते हैं तथा औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय नहीं होने से दो योगों संबंधी भङ्ग प्राप्त नहीं होते हैं । अतः यहाँ ६० को ८ से गुणित करने पर औदारिकमिश्र काययोग की अपेक्षा ४८० भङ्ग प्राप्त होते हैं । इस प्रकार नौ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में १३ योग संबंधी कुल पदवृत्त  $१४४०० + १६२० + ४८० = १६५००$  होते हैं ।

देशधिरन गुणस्थान में योग ११ और पद ५२ हैं और यहाँ सब योगों उदयपद और उनके भङ्ग सम्भव हैं अतः यहाँ ११ से ५२ को करके २४ से गुणित करने पर कुल भङ्ग १३७२८ होते हैं ।





उक्त पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)	
मिथ्यात्व	१३	३६	२४	११२३२	१८६१२
	१०	३२	२४	७६८०	
सासादन	१२	३२	२४	६२१६	६७२८
	१	३२	१६	५१२	
मिश्र	१०	३२	२४	७६८०	७६८०
अविरत सम्यग्दृष्टि	१०	६०	२४	१४४००	१६८००
	२	६०	१६	१६२०	
	१	६०	८	४८०	
देवविरत	११	५२	२४	१३७२८	१३७२८
प्रमत्तसंगत	११	४४	२४	११६१६	१३०२४
	२	४४	१६	१४०८	
अप्रमत्तसंगत	१०	४४	२४	१०५६०	११२६४
	१	४४	१६	७०४	
अभूयंकरण	६	२०	२४	४३२०	४३२०
अनिवृत्ति बाधर	६	२	१२	२१६	२५२
	६	१	४	३६	
	६	१	१	६	६
					६५७१७ पदवृन्द



में १२ भंग और एक प्रकृतिक उदयस्थान में ५ भंग होते हैं, जिनका कुल जोड़ १७ हुआ। इन्हें वहाँ संभव उपयोगों की संख्या ७६ गुणित कर देने पर ११६ होते हैं। जिनको पूर्व राशि ७५८४ में मिला देने पर कुल भंग ७७०३ होते हैं। कहा भी है—

उदयानुवओगेसुं सगसयरिसया तिउत्तरा होति ।<sup>१</sup>

अर्थात्—मोहनीय के उदयस्थान विकल्पों को वहाँ संभव उपयोगों से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण ७७०३ होता है।

किन्तु मिश्र गुणस्थान में उपयोगों के बारे में एक मत यह भी है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में पांच के वजाय अवधि दर्शन सहित छह उपयोग पाये जाते हैं। अतः इस मत को स्वीकार करने पर मिश्र गुणस्थान की ४ चौबीसी को ६ से गुणित करने से २४ होते हैं और इन २४ को २४ से गुणित करने पर ५७६ होते हैं अर्थात् इस गुणस्थान में ४८० की वजाय ६६ भंग और बढ़ जाते हैं। अतः पूर्व बताये गये ७७०३ भंगों में ६६ को जोड़ने पर कुल भंगों की संख्या ७७६९ प्राप्त होती है। इस प्रकार ये उपयोग<sup>२</sup>-गुणित उदयस्थान भंग जानना चाहिये।

उपयोगों की अपेक्षा उदयविकल्पों का विवरण इस प्रकार है—

गुणस्थान	उपयोग	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	५	८ × २४	६६०
सासादन	५	४ × २४	४८०
मिश्र	५	४ × २४	४८०

१. पञ्चमंथ, सप्ततिका, भा० ११८।

२. गी० कर्मकाण्ड भा० ४६२ और ४६३ में उपयोगों की अपेक्षा उदयस्थान ७७०३ और पदवृन्द ५१०८३ बताये हैं।



में ४४, अप्रमत्तसंयत में ४४ और अपूर्वकरण में २० उदयस्थान पद हैं इनका कुल जोड़  $४४ + ४४ + २० = १०८$  होता है। इन्हें यहाँ संभव ७ उपयोगों से गुणित करने पर ७५६ हुए। इस प्रकार पहले से लेकर आठवें गुणस्थान तक के सब उदयस्थान पदों का जोड़  $६६० + ६७२ + ७५६ = २०८८$  हुआ। इन्हें भंगों की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानों के कुल पदवृन्दों का प्रमाण  $२०८८ \times २४ = ५०११२$  होता है। अनन्तर दो प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द २४ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द ५, इनका जोड़ २९ हुआ। सो इन २९ को यहाँ संभव ७ उपयोगों से गुणित कर देने पर २०३ पदवृन्द और प्राप्त हुए। जिन्हें पूर्वोक्त ५०११२ पदवृन्दों में मिला देने पर कुल पदवृन्दों का प्रमाण ५०३१५ होता है कहा भी है—

पन्नासं च सहस्रा तिन्नि सया चैव पन्नारा ।<sup>१</sup>

अर्थात्—मोहनीय के पदवृन्दों को यहाँ संभव उपयोगों से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण पचास हजार तीनसौ पन्द्रह ५०३१५ होता है।

उक्त पदवृन्दों की संख्या मिश्र गुणस्थान में पांच उपयोग भाग की अपेक्षा जानना चाहिये। लेकिन जब मतान्तर से पांच की वजह उपयोग स्वीकार किये जाते हैं तब इन पदवृन्दों में एक अधिक उपयोग के पदवृन्द  $१ \times २२ \times २४ = ७६८$  भंग और बढ़ जाते हैं और कुल पदवृन्दों की संख्या ५०३१५ की वजाय ५१०८३ हो जाती है।

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

<sup>१</sup> सप्ततिका प्रक ११८ ।



अप्रमत्तसंयत, इन तीन गुणस्थानों में तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्या हैं और अपूर्वकरण आदि आगे के गुणस्थानों में एक शुक्ललेश्या होती है।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में से प्रत्येक में प्राप्त चौबीसी पहले वतलाई जा चुकी है। इसलिये तदनुसार मिथ्यात्व में ८, सासादन में ४ और मिश्र में ४ तथा अविरत सम्यग्दृष्टि में ८ चौबीसी हुई। इनका कुल जोड़ २४ हुआ। इन्हें ६ से गुणित कर देने पर  $२४ \times ६ = १४४$  हुए। देशविरत में ८, प्रमत्तविरत में ८ और अप्रमत्तविरत में ८ चौबीसी हैं। जिनका कुल जोड़ २४ हुआ। इन तीन गुणस्थानों में तीन शुभ लेश्यायें होने के कारण  $२४ \times ३ = ७२$  होते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान में ४ चौबीसी हैं, लेकिन यहाँ सिर्फ एक शुक्ल लेश्या होने से सिर्फ ४ ही प्राप्त होते हैं। उक्त आठ गुणस्थानों की कुल संख्या का जोड़  $१४४ + ७२ + ४ = २२०$  हुआ। इन्हें २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानों के कुल उदयस्थान विकल्प  $२२० \times २४ = ५२८०$  होते हैं। अनन्तर इनमें दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ इस प्रकार १७ भंगों को और मिला देने पर कुल उदयस्थान विकल्प  $५२८० + १७ = ५२९७$  होते हैं। ये ५२९७ लेश्याओं की अपेक्षा उदयस्थान विकल्प जानना चाहिये।

इन उदयस्थान विकल्पों का विवरण क्रमशः इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	६	$८ \times २४$	१९२
सासादन	४	$४ \times २४$	९६
मिश्र	४	$४ \times २४$	९६
	८	$८ \times २४$	१९२





अर्थात्—मोहनीयकर्म के उदयस्थान और पदवृन्दों को लेश्याओं से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण क्रम से ५२६७ और ३८२३७<sup>१</sup> होता है ।

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	६	६८	२४	६७६२
मासादन	६	३२	२४	४६०८
मिथ्य	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तगंयत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तगंयत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिशर	१	२	१२	२४
	१	१	४	४
सूक्ष्मगंयत	१	१	१	१
				३८२३७ पदवृन्द

१. गो. तर्कसार भा. ५०४ और ५०५ में भी लेश्याओं की अपेक्षा उदय-  
पद ५२६७ और पदवृन्द ३८२३७ बतावने हैं ।



होने के कारण का विचार पहले किया जा चुका है। अतः यहाँ संकेत मात्र करते हैं कि—‘तिण्णे’—अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं तथा ‘एगे’ दूसरा सासादन गुणस्थान में सिर्फ एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। मिथ्य गुणस्थान में २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं—‘तिग मीसे’। इसके बाद चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चार गुणस्थानों में से प्रत्येक में २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं। आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान हैं। नौवें गुणस्थान—अनिवृत्तिवादर में २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये ग्यारह सत्तास्थान हैं—‘एक्कार वायरम्मी’। सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं तथा ‘तिन्नि उवसंते’ उपशांतमोह गुणस्थान में २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।<sup>१</sup>

इस प्रकार से गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों के बतलाने के बाद अब प्रसंगानुसार संवेध भङ्गों का विचार करते हैं—

- १ तिण्णे एगे दो मिस्से चदुमु पण णियट्ठीए ।  
तिण्णि य धूलेयारं मुहमे चत्तारि तिण्णि उवसंते ॥

—गो० कर्मकांड गा० १०६

मोहनीयकर्म के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ३, सासादन में १, मिथ्य में २, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में पाँच-पाँच, अपूर्वकरण में ३, अनिवृत्तिवादर में ११, सूक्ष्मसंपराय में ४ और उपशांतमोह में ३ सत्तास्थान हैं।

विशेष—कर्मकांड में मिथ्य गुणस्थान के ३ और गो० कर्मकांड में सत्तास्थान बतलाने हैं।



में २८, २४ २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

प्रमत्त विरत गुणस्थान में ६ प्रकृतिक बंधस्थान तथा ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमें से ४ प्रकृतिक उदयस्थानों २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। ५ और ६ प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये पांच-पांच सत्तास्थान हैं तथा ७ प्रकृतिक उदयस्थान में २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में पूर्वोक्त प्रमत्तसंयत गुणस्थान की तरह १७ सत्तास्थान जानना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान में ६ प्रकृतिक बंधस्थान और ४, ५ तथा ६ प्रकृतिक उदयस्थान तथा इन तीन उदयस्थानों में से प्रत्येक में २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल ६ सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच बंधस्थान तथा २ और १ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान हैं। इनमें से २ प्रकृतिक बंधस्थान और २ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २३, २१, २० और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। ४ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, २० और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान हैं। ३ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान हैं। २ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं और १ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं।



शब्दार्थ—छण्व छक्क—छह, नौ और छह, तिग सत्त दुग—तीन, सात और दो, दुग तिग दुगं—दो, तीन और दो, तिगछ्ठ चऊ—तीन, आठ और चार, दुग छ च्चउ—दो, छह और चार, दुग पण चउ—दो, पांच और चार, चउ दुग चउ—चार, दो और चार, पण एग चऊ—पांच, एक और चार ।

एगेगमट्ट—एक, एक और आठ, एगेगमट्ट—एक, एक और आठ, छउमत्थ—छद्मस्थ (उपशान्तमोह, क्षीणमोह) केवलिजिणाणं—केवलि जिन (सयोगि और अयोगि केवली) को अनुक्रम से, एग चऊ—एक और चार, एग चऊ—एक और चार, अट्ट चउ—आठ और चार, दु छक्क—दो और छह, उदयंसा—उदय और सत्ता स्थान ।

गाथार्थ—छह, नौ, छह; तीन, सात और दो; दो, तीन और दो; तीन, आठ और चार; दो, छह और चार; दो, पांच और चार; चार, दो और चार; पांच, एक और चार; तथा

एक, एक और आठ; एक, एक और आठ; इस प्रकार अनुक्रम से वंघ, उदय और सत्तास्थान आदि के दस गुणस्थानों में होते हैं तथा छद्मस्थ जिन (११ और १२ गुणस्थान) में तथा केवली जिन (१३, १४, गुणस्थान) में अनुक्रम से एक चार और एक, चार तथा आठ और चार; दो और छह उदय व सत्तास्थान होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है—

(मेष पृ० ३०७ का)

कर्मस्थ से गो० कर्मकांड में इन गुणस्थानों के संग मिश्र व मासादन में ३-७-१, देशविरत में २-२-४ अप्रमत्तविरत में ५ मि केवली में २-४ ।

कर्मस्थ में उक्त गुणस्थानों के संग इस प्रकार है—मासादन में देशविरत में ७-६-४, अप्रमत्तविरत में ४-२-४, मायोगिकेवली में ।





२३, २४, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह बंधस्थान हैं। इनमें से २३ प्रकृतिक बंधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव को होता है। इसके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक और साधारण के विकल्प से चार भंग होते हैं। २४ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध होते समय २० भंग होते हैं तथा शेष अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि की अपेक्षा एक-एक भंग होता है। इस प्रकार २४ प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग २५ हुए।

२६ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध करने वाले जीव के होता है। इसके १६ भंग होते हैं तथा २८ प्रकृतिक बंधस्थान देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के होता है। इनमें से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियों का बंध होते समय तो ८ भंग होते हैं और नरक गति के योग्य प्रकृतियों का बंध होते समय १ भंग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बंधस्थान के ९ भंग हैं।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं। तिर्यच पंचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय ४६०८ भंग तथा मनुष्य गति के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय भी ४६०८ भंग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बंधस्थान के कुल ९२४० भंग होते हैं।

तीसरे प्रकृतिक के साथ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बंधस्थान विष्णुप्राण के नहीं होता है, क्योंकि तीसरे प्रकृतिक का बंध मनुष्य



विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में यह बतलाया गया है कि किस बंधस्थान में कितने उदयस्थान और कितने सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह ज्ञात नहीं होता है कि वे उदय और सत्तास्थान कितनी प्रकृति वाले हैं और कौन-कौनसे हैं। अतः इस बात को आचार्य मलयगिरि कृत टीका के आधार से स्पष्ट किया जा रहा है।

तेईस, पच्चीस और छव्वीस प्रकृतिक बंधस्थानों में से प्रत्येक में नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं—‘नव पंचोदय संता.....’। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध होता है और इसको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य बाँधते हैं। इन तेईस प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के सामान्य से २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते हैं। इन उदयस्थानों को इस प्रकार घटित करना चाहिये—जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य तेईस प्रकृतियों का बंध कर रहा है, उसको भव के अपान्तराल में तो २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। क्योंकि २१ प्रकृतियों के उदय में अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २३ प्रकृतियों का बंध सम्भव है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियों के होता है। क्योंकि यह उदयस्थान एकेन्द्रियों के सिवाय अन्य नहीं पाया जाता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्यों के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्यों के होता है। २८, २९, ३० प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान







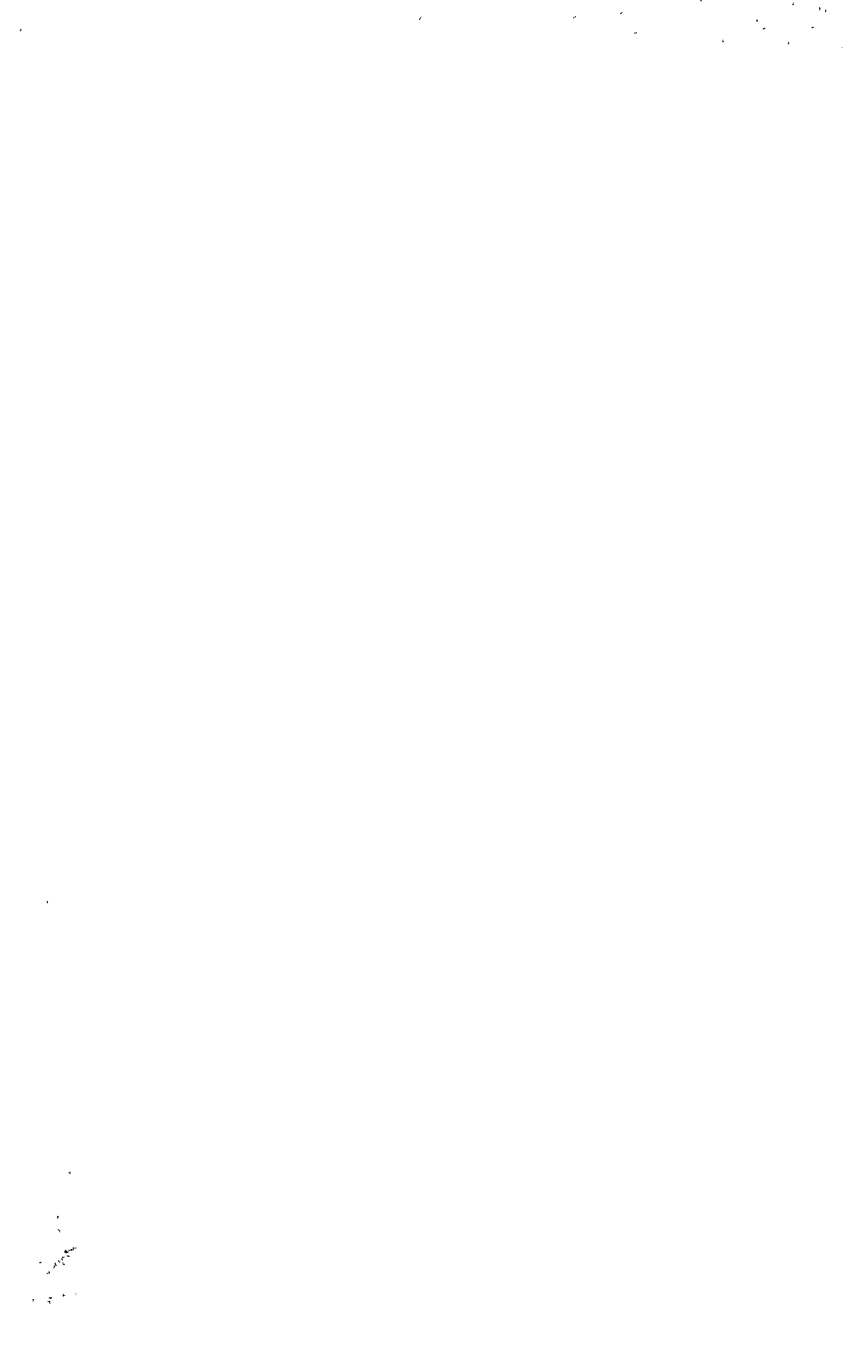




























है ।

**पुद्गलिका विवृति शुक्लध्यान**—जिस शुक्लध्यान में सर्वत्र समान द्वारा मीमं निरीम के रूप में अनन्तः सूक्ष्म वायव्योप के आश्रय में अन्य मीमों को रोक दिया जाता है ।

**सूक्ष्म क्षेत्र पक्षोपम**—बादर क्षेत्र पक्ष के वाताग्रों में से प्रत्येक के असंस्पात गाँठ करके पक्ष को लगायत जर हो । ये गाँठ उस पक्ष में आकाश के जितने प्रदेशों को स्पष्ट करें और जिस प्रदेशों को स्पष्ट न करें, उनसे प्रति समय एक-एक प्रदेश का अवहरण करते-करते जितने समय में स्पष्ट और अस्पष्ट सभी प्रदेशों का अवहरण किया जाता है, उतने समय को एक सूक्ष्म क्षेत्र पक्षोपम कहते हैं ।

**सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त**—कोई एक जीव संसार में भ्रमण करते हुए आकाश



। पत्रना ४१ ।

स्पर्शक—सर्पणार्थों के समूह को स्पर्शक कहते हैं ।

स्पर्श मातृकर्म—जिस कर्म के उद्देश्य में शरीर का स्पर्श कर्कश, मृदु, स्निग्ध, रुक्ष आदि रूप हो ।

स्पर्शग अनुयोगद्वार—विशुद्धित कर्म वाले जीवों द्वारा किये जाने वाले क्षेत्र स्पर्शों का समुच्चय रूप से निर्देश करना ।

स्पर्शनेन्द्रिय स्पर्शजावग्रह—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान ।



अनन्तानुसंधी सन्निवृत्तिः—(अनन्तानुसंधी क्रोध आदि २४ प्रकृतियाँ) अनन्तानुसंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; न्यग्रोध गरिमन्त्र, मारि, वामन, कुन्ज संस्थान; मृगमनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीर्तिका संहनन; अशुभ विहायोमति, नीचगोन, स्त्रीवेद, दुर्भंग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, निदा-निदा, प्रचला-प्रचला, मृगान्ति, उद्योत नाम, तिर्यचगति, तिर्यना-नुसंधी ।

अनन्तानुसंधी सन्निवृत्तिः—अनन्तानुसंधी, क्रोध मान, माया, लोभ ।

अनन्तानुसंधी सन्निवृत्तिः—(अनन्तानुसंधी क्रोध आदि २६ प्रकृतियाँ) अनन्तानुसंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; न्यग्रोधपरिमन्त्र, सादि, वामन, कुन्ज संस्थान; मृगमनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीर्तिका संहनन; अशुभ विहायोमति, नीचगोन, स्त्रीवेद, दुर्भंग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम,

1000

100



(६)

बसोमसमुत्पन्नक—चक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।

दर्शनैविक—चक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ।

दर्शनैविक—चक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन ।

बसोमावरणसमुत्पन्नक—अक्षुदर्शनावरण, अक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।

बसोमावरणसमुत्पन्नक—अक्षुदर्शनावरण, अक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रसन्ना ।

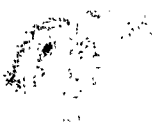
बसोमोद्भविक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय ।

बसोमोद्भविक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, अनन्तानु-  
बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ।

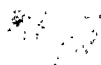
दुर्भोगसमुत्पन्नक—दुर्भोग, दुःस्वर, अनादेय, अगशःकीर्ति नाम ।

















1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100  
101  
102  
103  
104  
105  
106  
107  
108  
109  
110  
111  
112  
113  
114  
115  
116  
117  
118  
119  
120  
121  
122  
123  
124  
125  
126  
127  
128  
129  
130  
131  
132  
133  
134  
135  
136  
137  
138  
139  
140  
141  
142  
143  
144  
145  
146  
147  
148  
149  
150  
151  
152  
153  
154  
155  
156  
157  
158  
159  
160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
1000

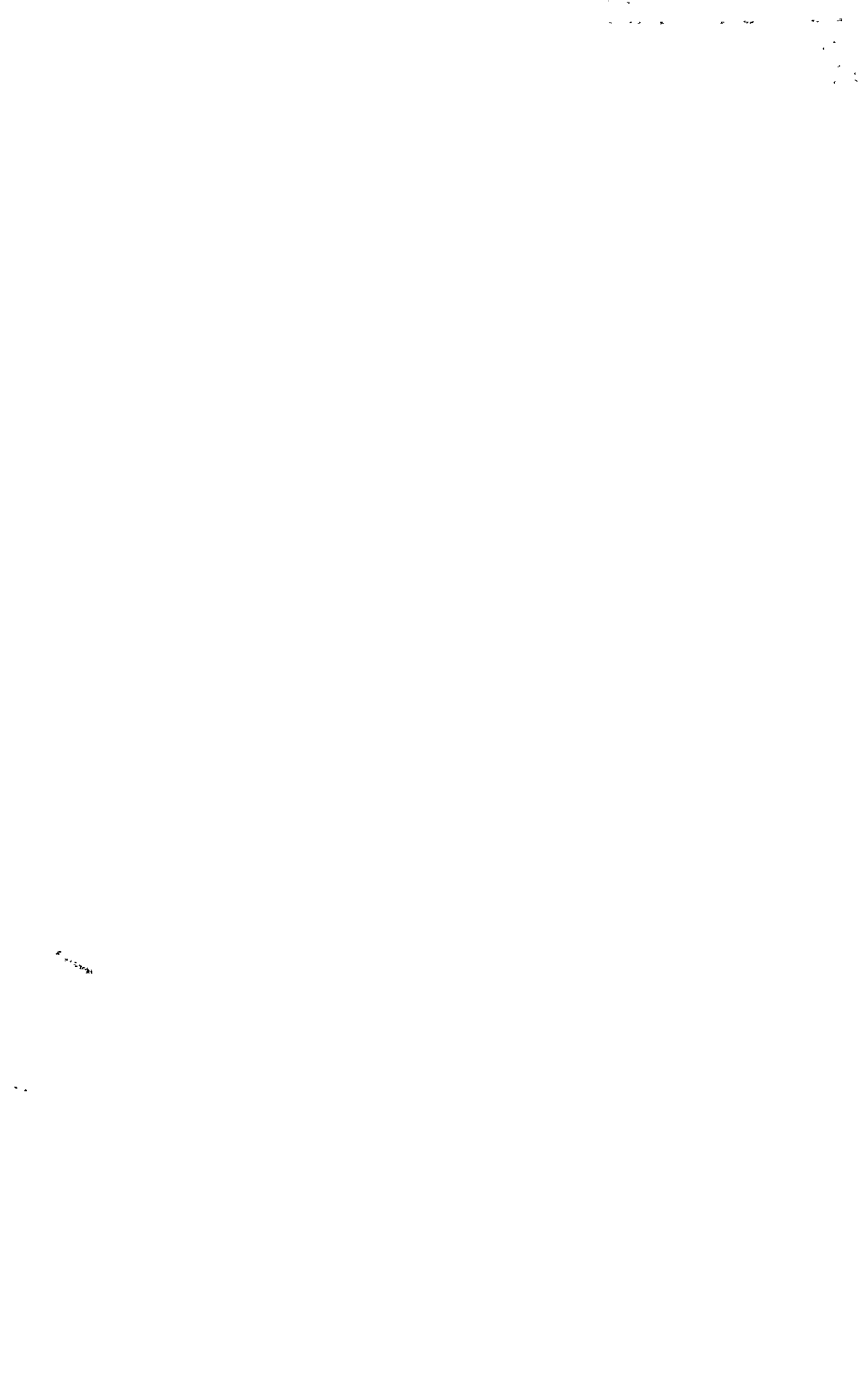






































अब सामान्य से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में बंध, उदय और मत्ता स्थानों का कथन करने के बाद उनके संयोग का विचार करते हैं।

२३ प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्वोक्त नौ उदयस्थान संभव हैं। किन्तु २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, इन ६ उदयस्थानों में देव और नारक संबंधी जो भंग हैं, वे यहाँ नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि २३ प्रकृतिक बंधस्थान में अपर्याप्त एकेन्द्रियों के योग्य प्रकृतियों का बंध होता है परन्तु देव अपर्याप्त एकेन्द्रियों के



दयनाथप्रायोग्य २६ प्रकृतिक सत्तास्थान की द्वांद्वर सेन  
 विकलेन्द्रिय, तिर्येच पंचेन्द्रिय और मनुष्य वर्ग के योग्य २६ प्रकृतियों  
 का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ६ उदय-  
 स्थान और २२, ८६, ८८, ८९, ९० और ७८ प्रकृतिक, ये द्वाद सत्तास्थान  
 होते हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान में सभी सत्तास्थान प्राप्त  
 हैं। उसमें भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान उगी जीव के होता है जिसने  
 नरकायु का बंध करने के पश्चात् वेदक सम्पादना को प्राप्त करके  
 तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया है। अनन्तर जो मिथ्यात्व में  
 जाकर और मरकर नारकों में उत्पन्न हुआ है तथा ६२ और ८८  
 प्रकृतिक सत्तास्थान देव, नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्येच पंचेन्द्रिय  
 और एकेन्द्रियों की अपेक्षा जानना चाहिये। ८६ और ९० प्रकृतिक  
 सत्तास्थान विकलेन्द्रिय, तिर्येच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और एकेन्द्रियों की



होना है। यहाँ २१, २४, २५, २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों में उन पाँच सत्तास्थानों का कथन तो पहले के ममान जानना चाहिये तथा दोष रहे २३, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, तो इनमें से प्रत्येक में ७८ प्रकृतिक के सिवाय शेष चार सत्तास्थान होते हैं। इन प्रकार ३० प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के कुल ४० सत्तास्थान होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव के बंध, उदय और सत्ता स्थानों और उनके संवेध का कथन समाप्त हुआ। जिनका विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—







$$x^2 + y^2 = z^2$$

$$x^2 + y^2 = z^2$$

$$x^2 + y^2 = z^2$$

इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, त्रिपञ्च  
 पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के होता है। नारकों में मासादन सामान्य  
 दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं जिससे मासादन में नारकों के २१  
 प्रकृतिक उदयस्थान नहीं कहा है। एकेन्द्रियों के २१ प्रकृतिक उदय-  
 स्थान के रहते हुए बादर और पर्वात के साथ यशःकीर्ति के विस्तार  
 से दो भंग संभव हैं, क्योंकि सूक्ष्म और अपर्याप्तों में मासादन जीव  
 उत्पन्न नहीं होता है, जिससे विकलेन्द्रिय, त्रिपञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्यों  
 के प्रत्येक और अपर्याप्त के साथ जो एक-एक भंग होता है वह वहाँ  
 संभव नहीं है। दोष भंग संभव हैं जो विकलेन्द्रियों के दो-दो, इस प्रकार  
 से छह हुए तथा त्रिपञ्च पंचेन्द्रियों के ८, मनुष्यों के ८ और देवों के ८  
 होते हैं। इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ३२ भंग  
 $(२+६+८+८+८=३२)$  हुए।

$$x^2 + y^2 = z^2$$

$$x^2 + y^2 = z^2$$

सासादन गुणस्थान के मान उदयस्थानों को बतावने के बाद और मत्तास्थानों को बतावने हैं कि यहाँ ६२ और दम प्राप्ति, ये दो मत्तास्थान हैं। इनमें में जो आत्मिक मनुष्य का बंध करके जगज्जालि से व्युत्त होकर सासादन भाग को प्राप्त होता है, उसके ६२ की मत्ता पाई जाती है, अन्य के मत्ता और दम प्रकृतियों की मत्ता चारों मत्तियों के सासादन जीवों के पाई जाती है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान को बंध, उदय और मत्तास्थानों को जानना चाहिये। अब इनके संवेध का विचार करते हैं।

२८ प्रकृतियों का बंध करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि को ३० और









(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

मित्र गुणस्थान में बंध आदि स्थानों को बतलाने के लिये अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को हैं कि उस गुणस्थान में तीन बंधस्थान, आठ उदयस्थान और चार स्थान हैं—'तिग्गड्ढचउ ।' वे इस प्रकार जानना चाहिये कि



२६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वैदक सम्यग्दृष्टि तिर्येन और मनुष्यों के होता है । औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव तिर्येन और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होता है । अतः यहाँ तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवों को नहीं कहा है । उसमें भी तिर्येत्तों के मोहनीय की २२ प्रकृतियों की सत्ता की अपेक्षा ही यहाँ वैदक सम्यक्त्व जानना चाहिये ।

१ पंचविशति-सप्तविंशत्युदयो देव-नैरयिकान् वैज्रियतियंश्मनुष्यांश्चाधिरुत्पाव-  
सेयी । तत्र नैरयिकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिवैदकसम्यग्दृष्टिर्वा, देवस्त्रिविध-  
सम्यग्दृष्टिरपि ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३०



उत्पन्न सत्ता वाले जीव नागों में उत्पन्न नहीं होते हैं। इस प्रकार २१ से लेकर ३० प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में सामान्य से ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ६२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार अविस्त सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सामान्य से कुल ३० सत्तास्थान हुए। जिनका विवरण निम्न प्रकार से जानना चाहिये—



३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ निर्गम और मनुष्यों के तथा  
 विक्रिया करने वाले तिर्यगों के होता है। सो गह्रा प्रारम्भ के दो में से  
 प्रत्येक के १४४-१४४ भंग होते हैं, जो द्रव्य संहनन, द्रव्य संस्थान, सुस्वर-  
 दुस्वर और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोमति के विकल्प से प्राप्त होते हैं  
 तथा अंतिम का एक भंग होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदय-  
 न के कुल २८९ भंग होते हैं। दुर्भंग, अनादेय और अयशःकीर्ति का





(६) प्रमत्तविरत गुणस्थान

अब छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बतल  
हैं कि—'दुग्ध पण नज'—दो बंधस्थान, पाँच उदयस्थान और च  
सत्तास्थान हैं। दो बंधस्थान २८ और २९ प्रकृतिक हैं। इन  
विशेष स्पष्टीकरण देशविरत गुणस्थान के समान जानना चाहिये।  
पाँच उदयस्थान २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक होते हैं।



१८७/ अग्रमत्तसंयत गुणस्थान

प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध, उदय और सत्तास्थानों को बताने के बाद अब अग्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बताने हैं कि 'चउदुग चउ'—चार बंधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। चार बंधस्थान इस प्रकार हैं—२८, २९, ३० और ३१ त्तिक। इनमें से तीर्थकर और आहारकद्विक के बिना २८ प्रकृति







१ अग्रे व्याख्या की श्रुति—आद्यसंहनन तदाव्याप्तसंहननमुक्ता अमुपसमये  
प्रतिपद्यते तन्मतेन मया द्विव्यक्तिः । एवमनित्युतिपादरन्तमसंपद्य  
—उपसाम्यतोद्वेप्यति द्रष्टव्यम् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३

द्विगम्यर परम्परा में यही एक मत पाया जाता है कि उपसमये  
में भारद्वाज के तीन संहननों में से किसी एक संहनन का उदय होता है  
इसकी पुष्टि के लिये देखिये गी० कर्मकांड भाषा २६६—

वेदतिय कोदमाणं मामासंजनणमेव सुदुमंते ।

सुदुमो लोहो सते वज्जंणारायणारामं ॥

2 8''

1 100 100 100 100

1 100

1



अनिवृत्तिवादर गुणस्थान की तरह सूक्ष्मसंस्कार गुणस्थान में भी यथाःकोटि रूप एक प्रकृति एक संस्थान है, ३० प्रकृतिक उपस्थान है तथा पूर्वोक्त ६३ आदि प्रकृतिक, आठ सत्तास्थान हैं। जगत् आठ सत्तास्थानों में से आदि के चार उपशमथेणि में होते हैं और शेष ८० आदि प्रकृतिक, अंत के चार क्षपकथेणि में होते हैं। शेष कथन अनिवृत्तिवादर गुणस्थान की तरह जानना चाहिये।

जगत् उपशांतमोह आदि ग्यारह से लेकर चौदह गुणस्थान का कथन करते हैं—'छउमत्यकेवलजिणानं'।



(१४) अयोगिकेवली गुणस्थान

अयोगिकेवली गुणस्थान में उदयस्थान और सत्तास्थान क्रमशः—  
'दु छवकं' अर्थात् दो उदयस्थान और छह सत्तास्थान हैं। इनमें से दो  
उदयस्थान ६ और ८ प्रकृतिक हैं। नौ प्रकृतियों का उदय तीर्थकर



मत्तास्थानी को नरक और तिर्यगति में बतलाते हैं कि—संज्ञा ११  
 पंच महात्म्य भूतवर्ग । अर्थात् नरकगति में ६२, ८६ और ८८  
 प्रकृतिक, ये तीन मत्तास्थान हैं । तिर्यगति में पाँच मत्तास्थान ६२,  
 ८८, ८६, ८०, और ७८ प्रकृतिक हैं । मनुष्यगति में ग्यारह मत्तास्थान  
 हैं—६२, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७६, ७५, ६ और ८ प्रकृतिक ।  
 देवगति में चार मत्तास्थान हैं—६२, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक ।

इस प्रकार नरक, तिर्यग, मनुष्य और देवगति के बन्धस्थान,  
 उदयस्थान और सत्तास्थानों को बतलाने के बाद अब उनके संबन्ध  
 का विचार नरक, तिर्यग, मनुष्य और देवगति के अनुक्रम से करते हैं ।

नरक गति में संक्षेप—पंचेन्द्रिय तिर्यगगति के योग्य २६ प्रकृतियों  
 का बन्ध करने वाले नारकों के पूर्वोक्त २१, २५, २७, २८ और २६  
 प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते हैं और इनमें से प्रत्येक उदयस्थान  
 में ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । तिर्यगगतिप्राप्त  
 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले जीव के तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं













और आहारसंयत के होते हैं। २० प्रकृतिक उदयस्थान सम्बन्धि या मिथ्यादर्शियों के होता है। इन सब उदयस्थानों में ६२ और २८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इसमें भी आहारसंयत के एक ६२ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। किन्तु नरकगतिप्राप्ति २८ प्रकृतियों का बंध करने वाले के २० प्रकृतिक उदयस्थान में ६५, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बंधस्थान में १६ सत्तास्थान होते हैं।





10



1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100  
101  
102  
103  
104  
105  
106  
107  
108  
109  
110  
111  
112  
113  
114  
115  
116  
117  
118  
119  
120  
121  
122  
123  
124  
125  
126  
127  
128  
129  
130  
131  
132  
133  
134  
135  
136  
137  
138  
139  
140  
141  
142  
143  
144  
145  
146  
147  
148  
149  
150  
151  
152  
153  
154  
155  
156  
157  
158  
159  
160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
84



**विकलेन्द्रिय—**विकलेन्द्रियों में २३ का वर्ण करने वाले जीवों में २१ और २६ प्रकृतियों के उदय में पाँच-पाँच उदयस्थान होते हैं तथा दोष चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में ७८ के बिना गारुडार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २३ प्रकृतिक वन्यस्थान में २६ सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक वन्यस्थानों में भी अपने-अपने उदयस्थानों की अपेक्षा २६-२६ सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार विकलेन्द्रियों में पाँच वन्यस्थान में छह उदयस्थानों के कुल मिलाकर १३० सत्तास्थान होते हैं।



तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के माय मिथ्यादृष्टि होते हुए सम्पत्ति के योग्य रत्न प्रकृतियों का वन्य करता है तथा ३१ के उदय में ३२, ३३ और ३६, में तीन सत्तारस्थान होते हैं। ये तीनों सत्तारस्थान तिर्यच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योंकि अन्यत्र पंचेन्द्रिय के ३१ का उदय नहीं होता है। उसमें भी ३६ प्रकृतिक सत्तारस्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यच पंचेन्द्रियों के होता है, सम्पत्ति तिर्यच पंचेन्द्रिय के नहीं, सम्पत्ति तिर्यचों के नियम से देवद्विक का वन्य होने तथा







विशेषार्थ— इस साक्षात् से पूर्व तक जानावरण आदि आठ कर्मों की  
 भूमि और उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का सामान्य  
 रूप से तथा जीवस्थान, गुणस्थान, गतिमार्गों और इन्द्रियमार्गों  
 में निर्देश किया है। लेकिन इस साक्षात् में कुछ विशेष संकेत करते हैं  
 कि जैसा पूर्व में गति आदि मार्गों में कथन किया गया है, उसके  
 साथ उनकी आठ अनुयोगद्वारों में घटित कर लेना चाहिये। इससे  
 साथ यह भी संकेत किया है कि सिर्फ प्रकृतिबंध रूप नहीं किन्तु  
 '—सगारेण नेयाणि' प्रकृतिबंध के साथ स्थिति, अनुभाग और  
 रूप से भी घटित करना चाहिये। क्योंकि ये बंध, उदय और





यद्यपि भाषा में भिन्न-विभिन्न वर्णन किया गया है कि इसी प्र-  
 रण, पदम और यथा रूप कर्मों का यथा अनुक्रम अथवा अंतर भेद-प्र-  
 का प्रकृति, भिन्न, अनुभाग और प्रदेश रूप से गति आदि मार्ग  
 के द्वारा आठ अनुयोगद्वारों में विभेदन कर लेना चाहिये जैसा  
 पहले वर्णन किया गया है। लेकिन इस विषय में टीकाकार आ-  
 मलयगिरि का वक्तव्य है कि 'यद्यपि आठों कर्मों के सन् अनुयोग  
 का वर्णन गुणस्थानों में सामान्य रूप से पहले किया ही गया है अ-  
 संख्या आदि सात अनुयोगद्वारों का व्याख्यान कर्मप्रकृति प्राभूत  
 को देखकर करना चाहिये। किन्तु कर्मप्रकृति प्राभूत आदि  
 इन काल में उपलब्ध नहीं हैं, इसलिये इन संख्यादि अनुयोग





100

पाषाण—जानावरण जो अंतराय कर्म की कुल  
 मिश्राकर दस, दर्शनावरण की नौ, वेदनीय की द्वा, मिश्रावरण  
 मोहनीय, साम्यकर्म मोहनीय, मध्यमन कीभ, तीन वेद, नार  
 आयु, नामकर्म की नौ, और दस्य मोर, ये इकतालीस  
 प्रकृतियाँ हैं, जिनके उदय और उशीरणा में स्वामित्व की  
 अपेक्षा विशेषता है।

विशेषाद्यं—पाषाण में उदय और उशीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा  
 विशेषता वाली इकतालीस प्रकृतियों के नाम बतलाये हैं। वे  
 इकतालीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—जानावरण की नतिजानावरण  
 पाँच, अंतराय की दानान्तराय आदि पाँच तथा दर्शनावरण की



यस्यैव मनुष्यादुरः प्रमत्तगुणस्थानकादूर्ध्वमुदीरणा न भवति त्रिगुण-  
एव केवलः ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४२-२४३

मनुमद्विज्ञानसंयादर च प्रज्ञासुमगमादर्थ ।

जसक्तिरती तिरमपरं नामस्य हवति नच एमा ॥

.....समो गि के व नि गु ण स्मा न कं मा य र् मु ण र् उ द य-उ दी र णे-अ नो म य-  
स्वा यं सू द य एव नो दी र णा ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४३





पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में अक्षरीय प्रकृतियों की बतलाने के लिये माथा में कहा है कि तीर्थंकरनाम और आहारकद्विज—आहारक अरीर और आहारक प्रयोग—इन तीन प्रकृतियों के मिश्रण से ११७ प्रकृतियों का वंश होता है। इन तीन प्रकृतियों के वंश न होने का कारण यह है कि तीर्थंकरनाम का यथ सम्यक्त्व गुण के सम्भाव में और आहारकद्विज का वंश संयम के सम्भाव में होता है। किन्तु पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में न सम्यक्त्व है और न संयम। इसीलिये मिथ्यात्व गुणस्थान में उक्त तीन प्रकृतियों का वंश न होकर सेष ११७ प्रकृतियों का वंश होता है।



विशेषार्थ—इस गायत्री में गायत्री अथवा अथर्ववेद और आठवें अथर्व-  
करण गुणस्थान में संबंधीय प्रकृतियों की संख्या का निर्देश दिया है।  
लेकिन यहाँ कथन दोन्नी की यह विशेषता है कि विद्वानों गायत्री में  
तो किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का वंश नहीं होता है—इसको  
मुख्य मानकर वंश प्रकृतियाँ बतलाई थीं किन्तु इस गायत्री से उसे क्रम  
को बदल कर यह बतलाया है कि किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों



बाधोसा एगुणं बंधइ अट्टारसंतमनिघट्टी ।  
 सत्तर सुद्धमसरागो सायममोहो सजोनि ति ॥५६॥

समर्थ—बाधोस—बाधेन, एगुणं—एक एक गुण, बंधइ—  
 बंध करता है, अट्टारसंतं—अट्टारह पर्यंत, अनिघट्टी—अनिघट्टिमादर  
 गुणस्थान बाधा, सत्तर—सत्तर. सुद्धमसरागो—सुद्धमसंपराय गुण-  
 स्थान बाधा, सायं—साया वेदनीय को, अमोहो—अमोहो (असंत-  
 मोह, क्षीणमोह) सजोनि ति—सजोनि केवली गुणस्थान तक ।



याधोसा गमुनं बंध अट्टारसंतमनिमट्टी ।

सत्तर मुहमतराणो सायममोहो सजोगि ति ॥५६॥

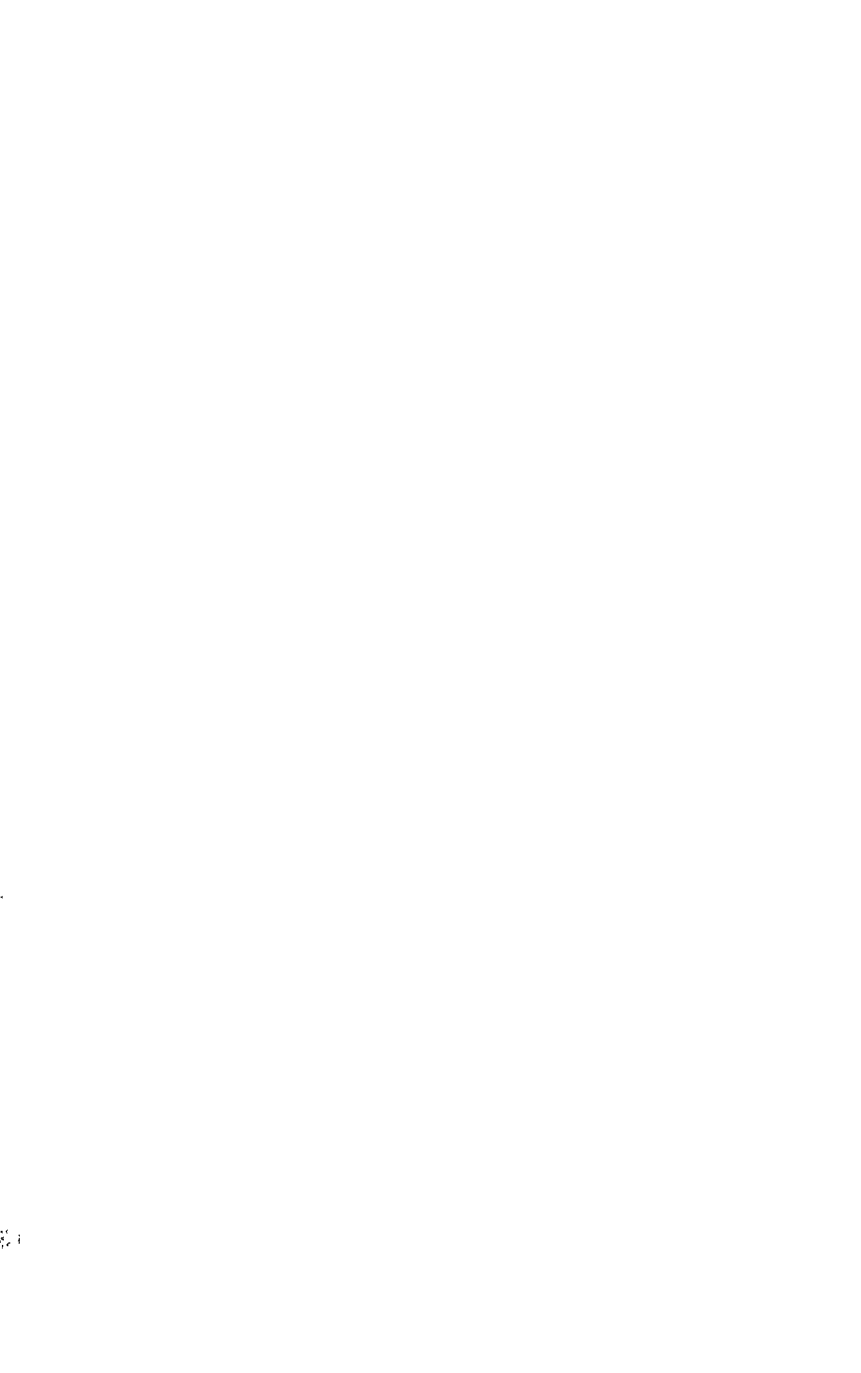
वाधोसा—याधोसा—बाधोसा, गमुनं—एक एक वग, बंध—  
बंध करता है, अट्टारसंत—अट्टारसंत, अनिमट्टी—अनिमट्टी  
गुणस्थान याता, सत्तर—सत्तर, मुहमतराणो—मुहमतराणो गुण-  
स्थान याता, सायं—सायं वेदगीम वी, अमोहो—अमोहो (अमोह-  
मोह, धीणमोह) सजोगि ति—सजोगिकेवली गुणस्थान तक ।























१. नियतिवाद आदि पाँचों कायी का निवरण अनुवैकरण के प्रसंग में बताया जा चुका है, तदनुक्रम यहाँ भी समझाना चाहिये।
२. एक भाववि या अन्तर्मूर्त्य प्रमाण नीचे की ओर ऊपर की स्थिति को मोड़ कर माध्य में से अन्तर्मूर्त्य प्रमाण दलितों को उठाकर उनका बैठने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियों में प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है।



अन्तर्गत प्रायः अन्तर्गतभी अन्तर्गतता का अन्तर्गत विवेक सिद्ध है वह  
 बताया है कि अन्तर्गत, अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 के अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 करते हैं। अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 न अन्तर्गतअन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत ही होता है—  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत



३ विद्यमान कर्मफलों में हम विचार के निरले भाव मत है कि विद्यार्थि एक मिथ्यात्व का, विद्यमान और सम्बन्धितान् दन दोनों का मिथ्यात्व, सम्बन्धितान् और सम्बन्ध, इन तीनों का तथा सम्बन्धित विद्योपपन्न सम्बन्ध को धर्म के समान तीनों का उपयोग करता है। जो जो सम्बन्ध को कल्पित होकर विद्यमान में प्राप्त करवाने का उपयोग कर जाता है, वह यदि सम्बन्ध को उद्भवता होने के साथ ही उपयोग सम्बन्ध को प्राप्त होता है तो उसके तीनों का उपयोग होता है। जो जो सम्बन्ध की उद्भवता के बाद सम्बन्धितान् को उद्भवता होने समान यदि उपयोगसम्बन्ध को प्राप्त करता है तो उसके विद्यमान और सम्बन्धितान् इन दो का उपयोग होता है और जो मोहनीय की ध्वनीय प्रकृतियों की सत्ता वाला विद्यार्थि होता है, उसके एक मिथ्यात्व का ही उपयोग होता है।

विद्यार्थ्यस्योपपन्नानां विद्यार्थ्यैर्ब्रह्मसम्बन्धैरेव । सम्बन्ध-सम्बन्ध-साधनैस्तु वेदकसम्बन्धैरेव ।

—सप्ततिशत प्रकरण टीका, पृ० २४६





12

13

14







अन्तर्मूर्त का अन्तर्मूर्त का उपयोग करता है। पहले समय में सबसे छोटे दलितों का उपयोग करता है, दूसरे समय में अल्पवयस्क दलितों का उपयोग करता है। इस प्रकार अन्तिम समय तक होने तक प्रति समय अल्पवयस्क, अल्पवयस्क दलितों का उपयोग करता है तथा जिस समय जितने दलितों का उपयोग करता है, उस समय दूसरे अल्पवयस्क दलितों का पर-प्रकृतियों में शोषण करता है, किन्तु यह कम उमर का समय तक ही चालू रहता है। अन्तिम समय में तो जितने दलितों का पर-प्रकृतियों में संक्रमण होता है उससे अल्पवयस्क दलितों का उपयोग करता है। इसके बाद एक अन्तर्मूर्त में शरीर का उपयोग करता है। इसके बाद एक अन्तर्मूर्त में हाथ्यादि छद्म का उपयोग करता है। हाथ्यादिपदक का

इस संबंधी विशेष ध्यान के लिए नमोऽस्तुति टीका देवता चाहिये। यही तो संक्षेप में प्रकाश होता है।







अतः ११. संपर्कस्थितिगत एक महत्त्वका सतत रक्षित ।  
 निवृत्तकाल के द्वारा केके से संयोजन साधन में मिलान करता  
 और एक समय कम दो वास्तविक काम में वृत्त रक्षितों का पुनर्ग  
 ने समान उपलब्ध करता है और परवर्ती रूप से संक्रमण कर  
 है । इस प्रकार संयोजनस्थितिगत साधन और प्रत्यक्षसाधनमा  
 के उपलब्ध होने के बाद एक समय कम दो वास्तविक काम  
 संयोजन साधन का उपलब्ध हो जाता है । निम्न समय संयोजन मा  
 के संग, उदय और उदय का निवृत्ति होता है, उसके अनन्त  
 समय से लेकर संयोजन मोभ की द्वितीयस्थिति से दलितों को लेक  
 उनकी मोभ वेदक काम के तीन भागों में से दो भाग प्रमाण प्रक  
 स्थिति करके वेदन करता है । इनमें से पहले विभाग का नाम अश्व  
 कर्णकरण काम है और दूसरे विभाग का नाम किट्टीहरणक  
 है । प्रथम अश्वकर्णकरण काम में पुनः रणार्थों से दलितों को लेकर  
 अपूर्व रणार्थ करता है ।

स्पर्धक की व्याख्या

जीव प्रति समय अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कंधों की





तदनन्तर भूभ्रमसंपन्नय गुणस्थान के अन्तिम मगम में संज्ञाके लोभ का उपगम हो जाता है। इस प्रकार मोहनीय की अद्वाय प्रकृतियां उपगमन्त हो जाती हैं और उसी समय आनावरण की बाध

१ अनियुक्तिवादर गुणस्थान तक उपगता प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है—

सत्तच्छ्रु नय य पनरस सोलम अट्टारसेव दृग्वीता ।

एगादि हु नञ्वीता पणचीमा मायरे जाण ॥







इसके बाद अनिवर्तनकरण में प्रवेश कर जाता है। यही भी स्थिति  
 घात आदि कार्य पहले के समान जारी रहते हैं। अनिवर्तनकरण के  
 पहले समय में दर्शननिक की देशीयशमता, विधिवि और निरूपण का  
 निष्पन्न हो जाता है। अनिवर्तनकरण के पहले समय में लेकर हुआ  
 स्थितिसत्ता का घात हो जाने पर दर्शननिक की स्थितिसत्ता अंशों  
 के योग्य रूप रह जाती है। इसके बाद हुआ प्रथम प्रमाण स्थिति-  
 सत्ता का घात हो जाने पर बहुनिर्देश्य जीव के योग्य स्थितिसत्ता  
 रूप रहती है। इसके बाद उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता का घात हो जाने  
 पर द्वीन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता रूप रहती है। इसके बाद पुनः  
 उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता का घात हो जाने पर त्रैन्द्रिय जीव के योग्य  
 स्थितिसत्ता रूप रहती है। इसके बाद पुनः उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता  
 का घात हो जाने पर एकेन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता रूप  
 रहती है।



वृद्धवर्गों व मृगुलों, विद्वत्तों व भ्रष्ट विद्वत्तों।

दशममोहयोग की क्षाया का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है किन्तु उसकी समाप्ति प्राणी मत्तियों में ही होती है।

यदि वृद्धायुक्त जीव क्षायावर्धन का प्रारम्भ करता है तो अन्तःपुरुषों व मनुष्य का क्षय हो जाने के कारण उसका मरण होना भी सम्भव है। उस स्थिति में मिथ्यात्व का उदय हो जाने से यह जीव पुनः अनन्तानुबन्धी का संघ और संकल द्वारा संनयन करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय में अनन्तानुबन्धी की नियम से सत्ता पाई जाती है। किन्तु जिसने मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है, वह पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्क का संचय नहीं करता है। सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर जिसके परिणाम नहीं बदले वह मरकर नियम से देवों में उत्पन्न होता है।





उक्त आठ प्रकृतियों का दाय होता है ।<sup>१</sup>

- १ अनियट्टियामरे सीनगिदितिनिरमतिरियनामाओ ।  
संगेज्ज इमे सेसे तण्णाओणाओ मीयंति ॥  
एत्तो हण्णद यत्तामट्ठगं वि.....



१ अशक्तिकरण काव—पीड़े से कान को अशक्त करने कहते हैं। यह दूध से बड़ा और जगर की ओर कप से सरला हुआ होता है। इसी प्रकार मिश्रण में शोष से लेकर शोष तक चारों संज्ञकों का अनुमान उत्तरोत्तर अन्त-गुणहीन हो जाता है, उस कारण को अशक्तिकरण कहते हैं। इसके आद्योत्तरण और उद्यतनापवर्तनकरण, ये दो नाम और देने से मिलते हैं।

२ किट्टीकरण—किट्टी का अर्थ कृश करना है। अतः जिस कारण से पुं





















एक पात्र प्रकृतियों का बतलाते हैं ।

देवगदसहगयाओ वुत्तरम समयभवियम्मि खीर्यंति ।  
सविवागेयरनामा नीयागोयं पि तत्थेव ॥

वाक्यार्थ—देवगदसहगयाओ—देवगति के साथ जिनका बंध  
होता है ऐसी, वुत्तरमसमयभवियम्मि—दो अन्तिम समय जितने



अन्नपरधेयणीयं मनुष्याद्य उच्चगोय नय नामे ।  
 वेणु अजोगिजिणी उचकोत जहन्न एवकारं ॥६६॥

नाम्नायं—अन्नपरधेयणीयं—दो में से कोई एक वेदनीय वस्त्र  
 मनुष्याद्य—मनुष्याद्य, उच्चगोय—उच्चगोय, नय नामे—नामक  
 की ती प्रकृतियाँ, वेणु—वेदन करते हैं, अजोगिजिणी—अजोगि-





भवविपाकी, क्षेपविपाकी और जीवविपाकी का अर्थ यह है कि जो प्रकृतियाँ नरक आदि भव की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे भवविपाकी कही जाती हैं, जैसे चारों आयु । जो प्रकृतियाँ क्षेप की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे क्षेपविपाकी कहलाती हैं, जैसे चारों आनुपूर्वी । जो प्रकृतियाँ अपना फल जीव में देती हैं उन्हें जीवविपाकी कहते हैं, जैसे पान जानावरण आदि ।

इहाँ मनुष्यायु भवविपाकी है, मनुष्यानुपूर्वी क्षेपविपाकी और





















40

100





*(continued)*

































— 100 —



































2

1

0

-1

-2

-3

-4

-5

-6

-7

-8

-9

-10

-11

-12

-13

-14

-15

-16

-17

-18

-19

-20

-21

-22

-23

-24

-25

-26

-27

-28

-29

-30

-31

-32

-33

-34

-35

-36

-37

-38

-39

-40

-41

-42

-43

-44

-45

-46

-47

-48

-49

-50

-51

-52

-53

-54

-55

-56

-57

-58

-59

-60

-61

-62

-63

-64

-65

-66

-67

-68

-69

-70

-71

-72

-73

-74

-75

-76

-77

-78

-79

-80

-81

-82

-83

-84

-85

-86

-87

-88

-89

-90

-91

-92

-93

-94

-95

-96

-97

-98

-99

-100

-101

-102

-103

-104

-105

-106

-107

-108

-109

-110

-111

-112

-113

-114

-115

-116

-117

-118

-119

-120

-121

-122

-123

-124

-125

-126

-127

-128

-129

-130

-131

-132

-133

-134

-135

-136

-137

-138

-139

-140

-141

-142

-143

-144

-145

-146

-147

-148

-149

-150

-151

-152

-153

-154

-155

-156

-157

-158

-159

-160

-161

-162

-163

-164

-165

-166

-167

-168

-169

-170

-171

-172

-173

-174

-175

-176

-177

-178

-179

-180

-181

-182

-183

-184

-185

-186

-187

-188

-189

-190

-191

-192

-193

-194

-195

-196

-197

-198

-199

-200

-201

-202

-203

-204

-205

-206

-207

-208

-209

-210

-211

-212

-213

-214

-215

-216

-217

-218

-219

-220

-221

-222

-223

-224

-225

-226

-227

-228

-229

-230

-231

-232

-233

-234

-235

-236

-237

-238

-239

-240

-241

-242

-243

-244

-245

-246

-247

-248

-249

-250

-251

-252

-253

-254

-255

-256

-257

-258

-259

-260

-261

-262

-263

-264

-265

-266

-267

-268

-269

-270

-271

-272

-273

-274

-275

-276

-277

-278

-279

-280

-281

-282

-283

-284

-285

-286

-287

-288

-289

-290

-291

-292

-293

-294

-295

-296

-297

-298

-299

-300

-301

-302

-303

-304

-305

-306

-307

-308

-309

-310

-311

-312

-313

-314

-315

-316

-317

-318

-319

-320

-321

-322

-323

-324

-325

-326

-327

-328

-329

-330

-331

-332

-333

-334

-335

-336

-337

-338

-339

-340

-341

-342

-343

-344

-345

-346

-347

-348

-349

-350

-351

-352

-353

-354

-355

-356

-357

-358

-359

-360

-361

-362

-363

-364

-365

-366

-367

-368

-369

-370

-371

-372

-373

-374

-375

-376

-377

-378

-379

-380

-381

-382

-383

-384

-385

-386

-387

-388

-389

-390

-391

-392

-393

-394

-395

-396

-397

-398

-399

-400

-401

-402

-403

-404

-405

-406

-407

-408

-409

-410

-411

-412

-413

-414

-415

-416

-417

-418

-419

-420

-421

-422

-423

-424

-425

-426

-427

-428

-429

-430

-431

-432

-433

-434

-435

-436

-437

-438

-439

-440

-441

-442

-443

-444

-445

-446

-447

-448

-449

-450

-451

-452

-453

-454

-455

-456

-457

-458

-459

-460

-461

-462

-463

-464

-465

-466

-467

-468

-469

-470

-471

-472

-473

-474

-475

-476

-477

-478

-479

-480

-481

-482

-483

-484

-485

-486

-487

-488

-489

-490

-491

-492

-493

-494

-495

-496

-497

-498

-499

-500

-501

-502

-503

-504

-505

-506

-507

-508

-509

-510

-511

-512

-513

-514

-515

-516

-517

-518

-519

-520

-521

-522

-523

-

THE JOURNAL OF THE AMERICAN MEDICAL ASSOCIATION  
PUBLISHED WEEKLY  
CHICAGO, ILL., MAY 1, 1919  
Vol. 34, No. 19

1  
 2  
 3  
 4  
 5  
 6  
 7  
 8  
 9  
 10  
 11  
 12  
 13  
 14  
 15  
 16  
 17  
 18  
 19  
 20  
 21  
 22  
 23  
 24  
 25  
 26  
 27  
 28  
 29  
 30  
 31  
 32  
 33  
 34  
 35  
 36  
 37  
 38  
 39  
 40  
 41  
 42  
 43  
 44  
 45  
 46  
 47  
 48  
 49  
 50  
 51  
 52  
 53  
 54  
 55  
 56  
 57  
 58  
 59  
 60  
 61  
 62  
 63  
 64  
 65  
 66  
 67  
 68  
 69  
 70  
 71  
 72  
 73  
 74  
 75  
 76  
 77  
 78  
 79  
 80  
 81  
 82  
 83  
 84  
 85  
 86  
 87  
 88  
 89  
 90  
 91  
 92  
 93  
 94  
 95  
 96  
 97  
 98  
 99  
 100  
 101  
 102  
 103  
 104  
 105  
 106  
 107  
 108  
 109  
 110  
 111  
 112  
 113  
 114  
 115  
 116  
 117  
 118  
 119  
 120  
 121  
 122  
 123  
 124  
 125  
 126  
 127  
 128  
 129  
 130  
 131  
 132  
 133  
 134  
 135  
 136  
 137  
 138  
 139  
 140  
 141  
 142  
 143  
 144  
 145  
 146  
 147  
 148  
 149  
 150  
 151  
 152  
 153  
 154  
 155  
 156  
 157  
 158  
 159  
 160  
 161  
 162  
 163  
 164  
 165  
 166  
 167  
 168  
 169  
 170  
 171  
 172  
 173  
 174  
 175  
 176  
 177  
 178  
 179  
 180  
 181  
 182  
 183  
 184  
 185  
 186  
 187  
 188  
 189  
 190  
 191  
 192  
 193  
 194  
 195  
 196  
 197  
 198  
 199  
 200  
 201  
 202  
 203  
 204  
 205  
 206  
 207  
 208  
 209  
 210  
 211  
 212  
 213  
 214  
 215  
 216  
 217  
 218  
 219  
 220  
 221  
 222  
 223  
 224  
 225  
 226  
 227  
 228  
 229  
 230  
 231  
 232  
 233  
 234  
 235  
 236  
 237  
 238  
 239  
 240  
 241  
 242  
 243  
 244  
 245  
 246  
 247  
 248  
 249  
 250  
 251  
 252  
 253  
 254  
 255  
 256  
 257  
 258  
 259  
 260  
 261  
 262  
 263  
 264  
 265  
 266  
 267  
 268  
 269  
 270  
 271  
 272  
 273  
 274  
 275  
 276  
 277  
 278  
 279  
 280  
 281  
 282  
 283  
 284  
 285  
 286  
 287  
 288  
 289  
 290  
 291  
 292  
 293  
 294  
 295  
 296  
 297  
 298  
 299  
 300  
 301  
 302  
 303  
 304  
 305  
 306  
 307  
 308  
 309  
 310  
 311  
 312  
 313  
 314  
 315  
 316  
 317  
 318  
 319  
 320  
 321  
 322  
 323  
 324  
 325  
 326  
 327  
 328  
 329  
 330  
 331  
 332  
 333  
 334  
 335  
 336  
 337  
 338  
 339  
 340  
 341  
 342  
 343  
 344  
 345  
 346  
 347  
 348  
 349  
 350  
 351  
 352  
 353  
 354  
 355  
 356  
 357  
 358  
 359  
 360  
 361  
 362  
 363  
 364  
 365  
 366  
 367  
 368  
 369  
 370  
 371  
 372  
 373  
 374  
 375  
 376  
 377  
 378  
 379  
 380  
 381  
 382  
 383  
 384  
 385  
 386  
 387  
 388  
 389  
 390  
 391  
 392  
 393  
 394  
 395  
 396  
 397  
 398  
 399  
 400  
 401  
 402  
 403  
 404  
 405  
 406  
 407  
 408  
 409  
 410  
 411  
 412  
 413  
 414  
 415  
 416  
 417  
 418  
 419  
 420  
 421  
 422  
 423  
 424  
 425  
 426  
 427  
 428  
 429  
 430  
 431  
 432  
 433  
 434  
 435  
 436  
 437  
 438  
 439  
 440  
 441  
 442  
 443  
 444  
 445  
 446  
 447  
 448  
 449  
 450  
 451  
 452  
 453  
 454  
 455  
 456  
 457  
 458  
 459  
 460  
 461  
 462  
 463  
 464  
 465  
 466  
 467  
 468  
 469  
 470  
 471  
 472  
 473  
 474  
 475  
 476  
 477  
 478  
 479  
 480  
 481  
 482  
 483  
 484  
 485  
 486  
 487  
 488  
 489  
 490  
 491  
 492  
 493  
 494  
 495  
 496  
 497  
 498  
 499  
 500  
 501  
 502  
 503  
 504  
 505  
 506  
 507  
 508  
 509  
 510  
 511  
 512  
 513  
 514  
 515  
 516  
 517  
 518  
 519  
 520  
 521  
 522  
 523  
 524  
 525







2

1

u

v

e

r

t

i

d

o

n

e